अंक-9 वर्ष-2018

नीलांजलि

भाकृअनुप-केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
बैरकपुर, कोलकाता – 700 120

सलाहकार मंडल

1. डा. ए. पी. शर्मा, प्रोफेसर, कॉलेज ऑफ फिशरीज, जी. बी. पंत कृषि प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड
2. डा. कृपाशंकर चौबे, वरिष्ठ पत्रकार एवं साहित्यकार, एसोसिएट प्रोफेसर, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, पोस्ट ऑफिस गांधी हिल्स, वर्धा–442001 (महाराष्ट्र)
3. डा. एम. सिन्हा, पूर्व निदेशक, भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता
4. डा. के. के. वास, पूर्व निदेशक, भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता
5. डा. बी. पी. मोहान्ति, प्रभागाध्यक्ष, मत्स्य संसाधन एवं पर्यावरणीय प्रबंधन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता
6. डा. उत्तम कुमार सरकार, प्रभागाध्यक्ष, जलाशय एवं आर्द्रक्षेत्र मात्स्यिकी प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता
7. डा. वी. आर. सुरेश, प्रभागाध्यक्ष, नदीय पारिस्थितिकी एवं मात्स्यिकी प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता
8. डा. सत्य प्रकाश तिवारी, प्रभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शिवपुर दीनबन्धु महाविद्यालय, हावड़ा, पश्चिम बंगाल

संपादकीय मंडल

डा. बि. के. दास
डा. एन. पी. श्रीवास्तव
डा एस. सामन्ता
मो. कासिम
सुनीता प्रसाद
सुमेधा दास

फोटोग्राफी

सुजीत चौधरी

नीलांजलि

संपादकीय मंडल

डा. बि. के. दास
डा. एन. पी. श्रीवास्तव
डा एस. सामन्ता
मो. कासिम
सुनीता प्रसाद
सुमेधा दास

भाकृअनुप–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
बैरकपुर, कोलकाता–700120, पश्चिम बंगाल

संरक्षक व प्रकाशक

डा. बसंत कुमार दास
निदेशक

ISSN 0970-616X
@2018

कवर डिजाइन

डा. एन. पी. श्रीवास्तव

इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का प्रकाशक की अनुमति के बिना कहीं भी प्रस्तुत करना वर्जित है।

मुद्रक का नाम व पता

मेसर्स शैली
4 ए, मानिकतला मेन रोड, कोलकात–54

भाकृअनुप–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
आई एस ओ 9000 : 2015 प्रमाणित संगठन
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
बैरकपुर, कोलकाता – 700 120, पश्चिम बंगाल

ICAR-Central Inland Fisheries Research Institute
AN ISO 9000 : 2015 Certified Organisation
(Indian Council of Agricultural Research)
Barrackpore, Kolkata - 700120 West Bengal

डा. बसंत कुमार दास, निदेशक
Dr. Basanta Kumar Das, Director

प्रस्तावना

हिन्दी भाषा में संस्थान की प्रथम गृह पत्रिका "नीलांजलि" आज नौ वर्ष पूरे कर चुकी है। वर्ष 2010 में शुभारंभ की गई इस पत्रिका का प्रकाशन हर वर्ष नियमित तौर पर होता रहा है और अब तक यह दो बार भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार योजना के अंतर्गत पुरस्कृत भी की गई है। दोनों ही बार, प्रथम पुरस्कार से, जो हमारे संस्थान के लिए अत्यंत ही गौरव की बात है। इन उपलब्धियों के लिए इस पत्रिका से जुड़े संस्थान कर्मियों को धन्यवाद देता हूँ तथा इसके सलाहकार मण्डल के सदस्यों और परिषद के महानुभाओं के मार्गदर्शन के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

"नीलांजलि" की कल्पना वैज्ञानिक लेखों के अलावा समाज, साहित्य और जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर और उन पर प्रकाश डालने के लिए किया गया था और धीरे–धीरे यह पत्रिका अपनी कल्पना को यथार्थ में परिणत करने में सफल हो रही है।

मैं यह आशा करता हूँ कि आने वाले दिनों में भी नीलांजलि अपने इस सफर में और भी मुकाम हासिल करेगी। इसका सफर अनवरत और अबाध बढ़ता रहे और भावी पीढ़ी के लिए एक प्रेरणा साबित हो।

शुभकामनाओं सहित,

(बसंत कुमार दास)

बैरकपुर
दिसंबर 2018

विषय सूची

	विषय	रचनाकार	पृष्ठ संख्या
➤	प्रस्तावना	डा. बि. के. दास, निदेशक	i
➤	संपादकीय	डा. बि. के. दास, डा. एन. पी. श्रीवास्तव, डा. एस. सामन्ता, मो. कासिम एवं सुनीता प्रसाद, सुमेधा दास	1
➤	अंतर्स्थलीय खुला जल मात्स्यिकी विकास की प्राथमिकतायें	डा. बि. के. दास एवं सुनीता प्रसाद	3
➤	जलवायु परिवर्तन एवं आर्द्र क्षेत्र मात्स्यिकी	श्रीमती गुंजन कर्नाटक, डा. उत्तम कुमार सरकार, डा. बि. के. दास, सुश्री सुनीता प्रसाद एवं श्री कौशिक रॉय	15
➤	पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन का प्रारम्भ एवं विकास	डा. कृपाल दत्त जोशी	21
➤	बाढ़कृत झीलें : संसाधन, चुनौतियां एवं प्रबंधन	श्री अबसार आलम एवं श्री जितेन्द्र कुमार	27
➤	मत्स्य दर्पण: मात्स्यिकी के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं व्यवसायिक दृष्टिकोण	श्री अरूण कुमार बोस, श्रीमती रिधि बोस एवं मो. कासिम	35
➤	पानी की गुणवत्ता के महत्वपूर्ण कारक	डा. कल्पना श्रीवास्तव, डा. संदीप कुमार मिश्रा, अमितरंजन पाण्डेय, सुशील कुमार वर्मा एवं श्री हरिओम वर्मा	39
➤	जूट की छाल सड़ाने की अत्याधुनिक तकनीकें और उनके लाभ	डा. देब प्रसाद एव श्री के. एल. अहिरवार	43
➤	हिंदी के विकास में कोलकाता की साहित्यिक संस्थाओं का योगदान	डा. सत्य प्रकाश तिवारी	55
➤	हिन्दी के साहित्येतिहास के ढ़ांचे का पुनर्पाठ	श्री शीतांशु कुमार	59
➤	भीष्म साहनी का स्त्री विमर्श	डा. विजेता साव	65
➤	स्वाधीनता आंदोलन के परिपेक्ष्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना–दृष्टि	श्री मनीष तोमर	71
➤	उत्तराधुनिकता, वैश्विक संस्कृति और उदय प्रकाश की कहानियां	श्री विकास साव	79
➤	साहित्य, समाज और मानव संबंध : नए आयाम	डा. संतराम यादव	83
➤	गागर–गागर से महासागर बनती हिन्दी	डा. नलिन खोइवाल	87
➤	वे नारी थी, पर अंग्रेजों पर भारी थी	श्रीमती मधु शर्मा कटिहा	91

कवितायें

	विषय	रचनाकार	पृष्ठ संख्या
➢	कौरव कौन, कौन पाण्डव	स्व. अटल विहारी बाजपेयी	105
➢	मज़हब कोई ऐसा चलाया जाए	स्व. गोपाल दास नीरज	107
➢	बस व्यथा ही व्यथा	स्व. चन्द्रसेन विराट	109
➢	अमर शहीद	डा. एन. पी. श्रीवास्तव	111
➢	प्रेम एक शक्ति	डा. कल्पना श्रीवास्तव	113
➢	स्वच्छता अभियान	श्री उमाशंकर	115

विविध

➢	महत्वपूर्ण झलकियाँ	119
➢	रचनाकार विवरण	131

भाकृअनुप–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
आई एस ओ 9000 : 2015 प्रमाणित संगठन
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
बैरकपुर, कोलकाता – 700 120, पश्चिम बंगाल
ICAR-Central Inland Fisheries Research Institute
AN ISO 9000 : 2015 Certified Organisation
(Indian Council of Agricultural Research)
Barrackpore, Kolkata - 700120 West Bengal

सम्पादकीय

नीलांजलि का यह 9वां अंक आप के समक्ष प्रस्तुत करने में हमें अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। आशा है हमेशा की तरह यह अंक भी आपको उतना ही पसंद आयेगा। संवाद का सिलसिला हमसे बराबर बनाये रखिये। अपने विचार, अपने सुझाव नीलांजलि के आगामी अंकों की बेहतरी के लिये हम तक अवश्य ही पहुँचाते रहिये।

आप सबको यह बताते हुये अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है कि नीलांजलि के अंक 7 (2016) को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के प्रतिष्ठित 'गणेश शंकर विद्यार्थी हिंदी पत्रिका पुरस्कार' के प्रथम पुरस्कार से वर्ष 2016–17 के लिये पुनः सम्मानित किया गया है। इससे पहले यह प्रथम पुरस्कार नीलांजलि के अंक 2, वर्ष 2011 को भी दिया जा चुका है। हम सभी के लिये यह अत्यन्त ही बड़े गर्व की बात है कि नीलांजलि ने राष्ट्रीय स्तर पर यह प्रतिष्ठित पुरस्कार दो बार प्राप्त किया है। आप सभी जानते हैं कि नीलांजलि ने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की हिन्दी पत्रिकाओं में अपना एक विशेष स्थान बनाया है। नीलांजलि को इस मुकाम तक पहुँचाने में निश्चित रूप से आप सभी का बड़ा योगदान है। आपका साथ हमें मिला, आपने नीलांजलि को बहुत पसंद किया, हमें समय समय पर हर संभव सहयोग दिया, उस सब के लिये हम ह्रदय से आपका आभार व्यक्त करते हैं। हम अपने रचनाकारों का भी अभिनन्दन करते हैं, उन्हें धन्यवाद देते हैं। हम संस्थान के निदेशक, डा. बि. के. दास व समस्त नीलांजलि परिवार को आभार व्यक्त करते हैं जिनके सहयोग के बिना नीलांजलि का प्रकाशन संभव नहीं था। संस्थान व पूरे नीलांजलि परिवार में जश्न व खुशी का माहौल है। चारों तरफ से बधाईयों का तांता लगा हुआ है। हम अपने सभी हितैषियों को ह्रदय से धन्यवाद देते हैं। अपेक्षा आप सभी से बस यही है कि यह माहौल इसी तरह आगे भी बना रहे ताकि हम नीलांजलि को भविष्य में और भी अधिक ऊँचाईयों तक ले जा सकें।

हर्ष का एक और विषय है। अभी हाल ही में 13.07.2018 को नीलांजलि के सलाहकार मंडल के माननीय सदस्य डा. सत्य प्रकाश तिवारी को भानु प्रतिष्ठान, नेपाल ने सम्मानित किया। डा. तिवारी ने नेपाली कवि, भानु भक्त व गोस्वामी तुलसीदास के काव्य के तुलनात्मक अध्ययन पर अनूठा साहित्य सृजन किया है। उन्हें यह सम्मान उसी साहित्य के लिये दिया गया है। काठमांडू में एक भव्य समारोह में नेपाल के प्रधानमंत्री, श्री के. पी. शर्मा ओली ने उन्हें सम्मान पत्र प्रदान किया। नीलांजलि परिवार की ओर से डा. तिवारी को हार्दिक अभिनन्दन, उन्हें बहुत बहुत बधाई।

खुशी के साथ–साथ गम की भी एक बात है। 19.07.2018 को देश के महान गीतकार एवं कवि श्री गोपालदास नीरज का दुखद निधन हो गया। नीलांजलि में नीरज की कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। डा एन. पी. श्रीवास्तव को व्यक्तिगत तौर पर उनसे मिलने और उन्हें नीलांजलि की प्रतियाँ भेंट करने का सौभाग्य मिला है। नीलांजलि से नीरज जी का विशेष लगाव था। उन्होंने मुक्तकंठ से इसकी प्रशंसा भी की थी एवं अपनी शुभकामनायें नीलांजलि को दी थीं। इस अंक में उनकी एक बहुचर्चित कविता को सम्मिलित किया गया है। हम नीरज जी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

भारत रत्न पूर्व प्रधानमंत्री, श्री अटल बिहारी वाजपेयी का देहावसान राष्ट्र के लिये एक अपूरणीय क्षति है। भारत माँ के सच्चे सपूत, महान जननायक, महाकवि, लेखक, ओजस्वी वक्ता व महान इंसान अटल जी को शत्शत् नमन और भावभीनी विनम्र श्रद्धांजलि। अटल जी की कविताएँ प्रकाशित कर नीलांजलि गौरवान्वित व धन्य हुई है।

नीलांजलि के सलाहकार मंडल के सम्मानीय सदस्य व नियमित रचनाकार तथा सिफरी के प्रख्यात वैज्ञानिक डा. वी. आर. देसाई का दुःखद निधन 12 अक्टूबर, 2018 को इंदौर में हुआ। संस्थान एवं नीलांजलि के लिये उनका योगदान प्रशंसनीय रहा है। नर्मदा नदी एवं महासीर मछली पर उनका कार्य अति विशेष है जिसकी देश व विदेशों में भी प्रशंसा हुई है। उनके देहावसान से सिफरी व नीलांजलि परिवार अत्यधिक दुःखी हैं। ईश्वर उनकी आत्मा को चिर शांति प्रदान करें।

हमारे एक और नियमित रचनाकर सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि श्री चन्द्रसेन विराट का भी दुःखद निधन 15 नवम्बर, 2018 को इंदौर में ही हुआ। उन्हें भी हमारी विनम्र श्रद्धांजलि। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें।

हम सभी रचनाकारों से विनम्र अपील करते हैं कि अपनी रचनाऐं नीलांजलि के आगामी अंकों के लिये हमें निरंतर भेजते रहिये। आपकी अमूल्य रचनाओं का सदैव स्वागत और प्रतीक्षा है।

नववर्ष 2019 आप सभी को बहुत–बहुत शुभ व मंगलमय हो।

बैरकपुर
दिसम्बर, 2018

डा. बि. के. दास
डा. एन. पी. श्रीवास्तव
डा एस. सामन्ता
मो. कासिम
सुनीता प्रसाद
सुमेधा दास

प्रकाशित रचनाओं के विचार रचनाकारों के हैं जिनसे संपादक मंडल का सहमत होना जरूरी नहीं है।

अंतर्स्थलीय खुला जल मात्स्यिकी विकास की प्राथमिकतायें

बि. के. दास एवं सुनीता प्रसाद

भूमिका

विश्व के अधिकतर देशों में मात्स्यिकी को पोषण समृद्ध खाद्य एवं आजीविका के साधन के स्रोत के रूप में देखा जाता है। हमारा देश, भारतवर्ष भी मात्स्यिकी के इस पहलू से अलग नहीं है। अपितु वास्तविकता यह है कि यहाँ पोषण सुरक्षा एवं आजीविका के लिये मात्स्यिकी की प्रयोजनीयता अन्य देशों की तुलना में कहीं अधिक है। विश्व स्तर पर भारत की मात्स्यिकी का विशेष स्थान रहा है तथा देश की सामाजिक एवं आर्थिक विकास में इसकी भूमिका अन्यतम है। खाद्य एवं कृषि संगठन, 2016 के अनुसार, वर्ष 2025 तक देश में मछली की मांग लगभग 160 लाख मेट्रिक टन आंकी गयी है जबकि वर्तमान मत्स्य उत्पादन केवल 958 मेट्रिक टन ही है। देश के कुल मत्स्य उत्पादन में अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी क्षेत्र से 65 प्रतिशत तथा समुद्री क्षेत्र से 35 प्रतिशत मछली प्राप्त होती है। यह देखा जा रहा है कि जहां अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी क्षेत्र का उत्पादन दिन–प्रति–दिन बढ़ रहा है वहीं समुद्री मात्स्यिकी क्षेत्र के उत्पादन में वृद्धि तो नहीं हो रही अपितु इसमें कमी भी देखी जा रही है। इसका कारण समुद्री मात्स्यिकी का अत्यधिक दोहन, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, औद्योगिकीकरण, मानवजनित कार्य जैसे जलक्षेत्रों में घरेलु अपशिष्ट जल और कारखानों से बहने वाले प्रदूषित जल का प्रवाह आदि देखा गया है। आज कार्प प्रजातियों का पालन विभिन्न पालन तकनीकों के प्रयोग जैसे अपशिष्ट जल का पुनर्चक्रण कर कार्प पालन, एकीकृत कृषि–सह–जलकृषि तथा अन्य बहुत सी अल्पकालीन पालन पद्धतियों आदि द्वारा किया जा रहा है। पर साथ ही यह कहना भी गलत नहीं होगा कि मीठा जलजीव पालन अब तक केवल पोखर आधारित पालन तक ही सीमित है। जलकृषि उत्पादन वृद्धि पर्यावरणीय एवं सामाजिक कारकों पर संपूर्णतः निर्भर करता है अतः इन कारकों के विकास से ही जलकृषि उत्पादन संभव हो सकेगा। हमारे देश में मात्स्यिकी क्षेत्र का विकास पूण रूप से अंतर्स्थलीय खुला जलक्षेत्र मात्स्यिकी पर निर्भर करता है। भारत में खुला जलक्षेत्र नदियों, नालों, झरनों, जलाशयों, बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र एवं झीलों के रूप में प्रचूर तौर पर उपलब्ध है, इसलिये बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्रों में मछली पालन, जलाशयों में घेरे में मछली पालन तथा मात्स्यिकी संसाधनों का संरक्षण आदि खुला जल मात्स्यिकी के अंतर्गत किया जाना उचित होगा क्योंकि खुला जल क्षेत्रों में पेन एवं पिंजरे में मछली पालन से मत्स्य उत्पादन में वृद्धि देखी गयी हैं पर साथ ही कृषि क्षेत्र में मछली पालन को बढ़ावा नहीं देना उचित होगा। वर्तमान में जलाशयों से कुल उत्पादन संभावित उत्पादन से बहुत कम, केवल 110 कि0ग्रा0 प्रति हे0 होता है। छोटे, मध्यम तथा बड़े जलाशयों का संभावित उत्पादन क्रमशः 500 कि0ग्रा0 प्रति हे0, 250 कि0ग्रा0 प्रति हे0 तथा 100 कि0ग्रा0 प्रति हे0 आंका गया है। इसी प्रकार, बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्रों की मत्स्य उपज केवल 400 से 800 कि0ग्रा0 प्रति हे0 होता है जबकि संभावित उत्पादन 1500 से 2000 कि0ग्रा0 प्रति हे0 है। (शर्मा एवं अन्य, 2010 तथा झा एवं अन्य, 2013)। अतः इन जल संसाधन क्षेत्रों के संभावित उत्पादन को उन्नत तकनीकों एवं वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग से प्राप्त किया जा सकता हैं जिससे देश में द्वितीय नील क्रांति के उद्देश्यों को प्राप्त करना सरल होगा।

भारत में खुला जल मात्स्यिकी संसाधन क्षेत्र तथा उनकी प्रबंधन प्रणाली

देश का खुला जलक्षेत्र विविध प्रकार के संसाधन क्षेत्रों जैसे नदियों, नालों, झरनों, जलाशयों, ज्वारनदमुखों,

बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र, पश्चजल एवं झीलों से समृद्ध है। इन संसाधन क्षेत्रों से प्राप्त होने वाली मत्स्य उत्पादन प्रणाली को नदियों, ज्वारनदमुखों तथा पश्च जलक्षेत्रों में प्रग्रहण मात्स्यिकी तथा जलाशयों, झीलों एवं बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्रों में पालन मात्स्यिकी के रूप में जाना जाता है। निम्नलिखित तालिका–1 में अंतर्स्थलीय खुला जल मात्स्यिकी संसाधन क्षेत्रों तथा उनके प्रबंधन प्रणालियों को दिखाया गया है –

तालिका–1 : अंतर्स्थलीय खुला जल मात्स्यिकी संसाधन क्षेत्र तथा उनकी प्रबंधन प्रणाली

संसाधन क्षेत्र	क्षेत्रफल	प्रबंधन प्रणाली
नदियाँ	29,000 कि0मी0	प्रग्रहण मात्स्यिकी
मैंग्रोव क्षेत्र	3,56,000 हे0	आजीविका निर्वहन
ज्वारनदमुख	3,00,000 हे0	प्रग्रहण मात्स्यिकी
ज्वारनदमुखी आर्द्रक्षेत्र (भेरी)	39,600 हे0	जलजीव पालन
पश्चजल / लैगून क्षेत्र	1,90,500 हे0	प्रग्रहण मात्स्यिकी
जलाशय	35,10,000 हे0	संवर्धन / पालन–आधारित मात्स्यिकी
बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र	3,54,213 हे0	पालन–आधारित मात्स्यिकी
पहाड़ी झील (Upland lakes)	7,20,000 हे0	पारम्परिक मात्स्यिकी / ज्ञात नहीं

- नदीय मात्स्यिकी

भारत में नदियों की कुल लंबाई 29,000 कि0मी0 है जिसमें 14 मुख्य, 44 मध्यम लंबाई वाली तथा अनगिनत छोटी नदियां एवं नाले हैं जो विश्व की सबसे समृद्ध इस जैवविविधता वाली संसाधन क्षेत्र का भरण–पोषण करती हैं। भारत में कुल पांच बड़े नदीय तंत्र हैं – गंगा नदी, ब्रह्मपुत्र नदी, सिन्धु नदी, पूर्वी तटीय नदियाँ तथा पश्चिमी तटीय नदियाँ। मत्स्य प्रजातियों की दृष्टि से भारतीय नदीय तंत्र विश्व के समस्त नदीय तंत्रों में सबसे अधिक समृद्ध है। गंगा नदी में लगभग 265, ब्रह्मपुत्र में 221, महानदी में 253, कावेरी में 80, नर्मदा में 84 तथा तापी नदी में 52 मत्स्य प्रजातियां दर्ज की गई हैं। पर कालांतर में

चित्र : सागर द्वीप के निष्क्रिय जलक्षेत्र में मत्स्य कृषि

पर्यावरणीय दाब, बांध एवं बैराजों के निर्माण, प्रदूषण, तलछट में गाद के जमाव एवं विनष्टकारी मत्स्यन आदि के कारण नदियों में मत्स्य प्रजातियों की संख्या घटने लगी है तथा इनका उत्पादन कम होने लगा है। हालांकि इसके निदान हेतु प्रबंधन संबंधी उपाय जैसे, वर्ष के कुछ महीनों में मछलियों को पकड़ने पर निषेध लगाना, जल संसाधनों को संरक्षित क्षेत्र में परिवर्तित करना, जाल छिद्रों का नियमन, विनष्टकारी मत्स्यन पर निषेध, अपशिष्ट जल का प्रवाह नदी क्षेत्र में नहीं करना आदि अपनाये गये हैं, पर इन उपायों के बावजूद भी इन नदीय क्षेत्रों का प्रबंधन एक कठिन कार्य है। अतः नदीय मात्स्यिकी तथा पारिस्थितिकी में सुधार के लिये बड़े कदम उठाया जाना चाहिये जैसे – नदियों में मछलियों का विसरण (रैंचिंग), मत्स्य आवास का पुनरूत्थान, प्रजनन

क्षेत्र को प्रदूषण मुक्त रखना, अभिगमन करने वाली मछलियों के आवागमन वाले क्षेत्रों का रखरखाव, मत्स्ययन नियमों का पालन, मछलियों को पकड़ने की अधिकतम संख्या नियत करना, गियर जालों से संबंधी नियमों का पालन करना, भौगोलिक सूचना तंत्र के प्रयोग द्वारा विशिष्ट मात्स्यिकी आंकड़ों का प्रबंधन, मछुआरों को दायित्वपूर्ण मात्स्यिकी हेतु जागरूक बनाना, पर्यावरणीय प्रवाह तथा जल प्रदूषण को रोकने के लिये जैव–प्रौद्योगिकी का प्रयोग आदि।

- बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र मात्स्यिकी

चित्र : पश्चिम बंगाल के आर्द्रक्षेत्र में मछुआरे मछली पकड़ते हुय

बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्रों का मानव विकास में विशेष योगदान रहा है। इन जल संसाधन क्षेत्रों का उपयोग विविध कार्यों जैसे, सिंचाई, मात्स्यिकी, जलापूर्ति, एवं मनोरंजन के लिये किया जाता है। ये जल संसाधन क्षेत्र पर्यावरण से कार्बन को अलग कर जलक्षेत्र में संग्रह करने, बाढ़ नियंत्रण, भौमजल का पुनर्भरण, पोषक तत्वों का नियंत्रण, विषाक्त तत्वों का अवधारण तथा जैव विविधता का रखरखाव करना आदि कार्यों के लिये उपयुक्त माने जाते हैं। आर्द्रक्षेत्र आमतौर पर नदियों के किनारे वाले क्षेत्र होते हैं जिनमें नियत समय के अंतराल पर बाढ़ के समय नदियों का पानी प्रवेश करने से इनका विस्तार क्षेत्र बहुत अधिक होता है। अतः ''बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र'' नदियों तथा झरनों, दोनों के साथ ही समान रूप से जुड़े होते हैं। देश के उत्तरी भाग में गंगा नदी एवं उत्तर–पूर्वी भाग में ब्रह्मपुत्र नदी के मुहानों पर बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र पाये जाते हैं। इन आर्द्रक्षेत्रों को कई नामों – चौर, मान, बोर, होर, पात आदि से जाना जाता है। ऐसे आर्द्रक्षेत्र जो नदियों से जुड़े होते हैं उन्हें खुला आर्द्रक्षेत्र और जो नदियों से जुड़े नहीं होते हैं, उन्हें बंद आर्द्रक्षेत्र कहा जाता है। इन जलक्षेत्रों के उद्गम स्थल, भौगोलिक स्थिति तथा भौतिक एवं रसायनिक संरचना के अनुसार इनके आकार एवं आकृति में विविधता देखने को मिलती है। असम, पश्चिम

तालिका 2 : भारत में बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्रों का वितरण

राज्य का नाम	क्षेत्रफल (हे0 में)
उत्तर प्रदेश	1,52,000
बिहार	40,000
पश्चिम बंगाल	42,500
अरूणाचल प्रदेश	2,500
असम	1,00,000
मणिपुर	16,500
मेघालय	213
त्रिपुरा	500

बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा मणिपुर में ऐसे संसाधन क्षेत्रों की विशेष भूमिका है क्योंकि लाखों मछुआरों की आजीविका इन जलक्षेत्रों पर निर्भर करती है। इन जलक्षेत्रों की जैविक उत्पादकता अधिक होती है तथा इनके तलछट में अपरद के अधिक जमाव के कारण मछलियों को अधिक दर से मत्स्य संग्रहण किया जा सकता है जिससे मछलियों का उत्पादन दर अधिक हो जाता है। भाकृअनुप–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान ने इन क्षेत्रों में अधिक मत्स्य उत्पादन के लिये तकनीकों का विकास किया है और कुछ राज्यों जैसे असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा मणिपुर के जलक्षेत्रों में इन तकनीकों के प्रयोग से उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है।

- जलाशय मात्स्यिकी

जलाशय ऐसे जलक्षेत्र होते हैं जिनको किसी नदी अथवा जल संसाधन क्षेत्र के प्रवाह को रोकने के लिये बनाया जाता है (सुगुणन, 1997)। भारतवर्ष में क्षेत्रफल तथा संभावित उत्पादन की दृष्टि से जलाशयों को मात्स्यिकी प्रबंधन के अनुसार तीन भागों में बांटा गया है– छोटे जलाशय (1000 हे0 से कम जलक्षेत्र वाले), मध्यम जलाशय (1000 से 5000 हे0 तक जलक्षेत्र वाले) तथा बड़े जलाशय (5000 हे0 से अधिक जलक्षेत्र वाले)। भारत में अंतर्स्थलीय जलाशय मात्स्यिकी संसाधन क्षेत्र सबसे अधिक, लगभग 3.15 मिलियन हे0 क्षेत्र में फैला हुआ है जिसमें छोटे जलाशयों की संख्या 19,134, मध्यम जलाशयों की 180 तथा बड़े जलाशयों की संख्या 56 दर्ज किया गया है (सुगुणन, 1995)। वर्तमान में कुल जलाशयी क्षेत्र 3.42 मिलियन हे0 से अधिक आंका गया है क्योंकि वर्ष 1989–2012 के दौरान 16 नये जलाशयों को सम्मिलित किया गया जिनका कुल जलक्षेत्र 0.27 मिलियन हे0 था। इसके अलावा, केन्द्रीय जल आयोग के वर्ष 2016 में जारी रिपोर्ट के अनुसार, 9 अतिरिक्त जलक्षेत्रों (कुल जलक्षेत्र 99,917 हे0) को जलाशयी क्षेत्र के अंतर्गत सम्मिलित किया जायेगा जिससे कुल जलाशयी क्षेत्र 3.51 मिलियन हे0 हो जायेगा। हालांकि जलाशयों का निर्माण मूलतः सिंचाई, विद्युत बनाने तथा अन्य जलसंसाधन विकास के लिये किया गया था पर कालांतर में इनकी भूमिका अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी क्षेत्र में विशेष रही है। पर साथ ही यह भी देखने को मिलता है कि इन जलसंसाधनों का मत्स्य उत्पादन इनकी संभावित क्षमता (छोटे जलाशयों में 500 कि0ग्रा/हे0, मध्यम जलाशयों में 250 कि0ग्रा/हे0 तथा बड़े जलाशयों में 500 कि0ग्रा/हे0) से बहुत ही कम है। अतः इनके संसाधन क्षेत्र एवं संभावित मत्स्य उपज को देखते हुये जलाशयों का विकास करना आवश्यक है जिससे अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी क्षेत्र का विकास हो सके। गत् दो दशकों में यह देखा गया है कि कुछ जलाशयों में मछलियों की उत्तरजीविता कम है, जबकि कुछ जलाशयों में मत्स्य प्रजातियां उनमें उपस्थिति अपार संसाधनों को संपूर्णतः उपयोग नहीं कर पाती हैं जिससे उत्पादन कम होता हैं। अतः जलाशयों में संभावित मत्स्य भरण को सहन करने वाली मछलियों की उत्तरजीविता संवर्धन करने तथा उपयुक्त मत्स्य प्रजातियों के पालन आधारित मात्स्यिकी को बढ़ावा देकर मत्स्य उत्पादन में वृद्धि करना संभव है।

अंतर्स्थलीय खुला जलक्षेत्र मात्स्यिकी विकास के संभावित क्षेत्र

अंतर्स्थलीय खुला जलक्षेत्रों में प्राथमिकता के आधार पर दीर्घकालिक मात्स्यिकी विकास के लिये मत्स्य उपज वृद्धि तथा इसकी जैव विविधता संरक्षण, दोनों पहलुओं पर एक साथ कार्य करना आवश्यक है। यह देखा जा रहा है कि समुद्री क्षेत्र से मछलियों का उत्पादन कम होता जा रहा है अतः यह संभावना व्यक्त की जा रही है कि अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी क्षेत्र जैसे जलाशय और बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र से प्राप्त मत्स्य उत्पादन उस कमी को पूरा

करने में सक्षम होगा। कुछ स्थानों पर जलजीव पालन क्षेत्रों की संख्या अनियन्त्रित होने अथवा मछली पालन के लिये इनका अधिकतम दोहन के कारण बहुत सी पर्यावरणीय, सामाजिक तथा कानूनी समस्यायें पैदा हो रही हैं। पर यह भी देखा गया है कि अंतर्स्थलीय खुला जल क्षेत्रों से उत्पादन उनकी संभावित उत्पादन से बहुत ही कम होता है। इस अंतर को कम करने के लिये पालन आधारित मात्स्यिकी उपयुक्त होगा। अतः मत्स्य उत्पादन में वृद्धि के लिये घिरे क्षेत्र में मछली पालन तकनीक को अच्छा माना जा रहा है। पर वर्तमान में मानवजनित कार्यकलापों के कारण जैवविविधता में ह्रास हो रहा है तथा मत्स्य प्रजातियों की संख्या में लगातार कमी हो रही है। खुला जलक्षेत्र प्रबंधकों के लिये मत्स्य विविधता का संरक्षण एवं मत्स्य आवास का पुनरूत्थान अत्यन्त दुष्कर कार्य माना जाता है।

- आर्द्रक्षेत्र एवं जलाशय मात्स्यिकी प्रबंधन

आर्द्रक्षेत्र एवं जलाशय में पाली जाने वाली मछलियों की मांग दिन–प्रति–दिन बढ़ रही है अतः मछलियों के उत्पादन में वृद्धि आवश्यक है। इन जलक्षेत्रों में उत्पादन संवर्धन के लिये पालन आधारित मात्स्यिकी अधिक प्रचलित है। खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार, विशिष्ट तकनीकों एवं प्रबंधन तरीकों द्वारा उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। संवर्धन का अर्थ है, किसी जलक्षेत्र में विशिष्ट प्रबंधन तकनीकों के प्रयोग द्वारा गुणात्मक एवं घनात्मक वृद्धि। अंतर्स्थलीय जलक्षेत्र जैसे जलाशयों एवं बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र में आमतौर पर संवर्धन तकनीकों में मत्स्य संचयन संवर्धन, प्रजाति संवर्धन, पर्यावरणीय संवर्धन, आवास संवर्धन तथा प्रबंधन तकनीकों का संवर्धन को किया जाता है। इन क्षेत्रों में संवर्धन हेतु पालन आधारित मात्स्यिकी को अधिक किया जाता है। संवर्धन संबंधित विभिन्न तकनीकों/ पद्धतियों को नीचे बताया गया है–

➢ मत्स्य भंडार/मत्स्य प्रजाति में वृद्धि

वाछिंत मत्स्य प्रजातियों की संख्या वृद्धि को उनके संचयन (स्टॉकिंग) तथा उनकी उत्तरजीविता में वृद्धि करके प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान में नदियों पर बांध निर्माण एवं तलछट में गाद के जमने से इनका संबंध खुला जल क्षेत्रों से टूट गया है। मूल नदियों में मत्स्य प्रजातियों का संग्रहण स्वतः कम होने से व्यावसायिक तौर पर महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजातियां कम हो गई हैं। ऐसी स्थिति में अपेक्षित मछलियों की अंगुलिकाओं के पालन से उत्पादन वृद्धि करना संभव होगा। संचयन संवर्धन के विशिष्ट पहलुओं जैसे मत्स्य प्रजातियों का चयन, उनका संचयन घनत्व का निर्धरण तथा संचयन के समय मछलियों का अपेक्षित आकार आदि पर ध्यान देना आवश्यक है। इस संवर्धन का उद्देश्य पालन आधारित मात्स्यिकी को आरंभ करना अथवा संचयित मछलियों का उत्पादन वृद्धि है।

➢ पर्यावरणीय संवर्धन

पर्यावरण संवर्धन का अर्थ मूलतः जलीय संसाधनों में उपस्थित पोषक तत्वों को उन्नत करना है। जल का पर्यावरण जल में उपस्थित पोषक तत्वों पर निर्भर करता है। यदि पर्यावरण स्वच्छ हुआ तो जल में पोषक तत्वों की गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है। चीन में जलक्षेत्रों के पर्यावरण संवर्धन संबंधी पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। कभी–कभी जलक्षेत्र में नियमित एवं अधिक संचयन के कारण मछलियों का घनत्व चयन सीमा से

अधिक हो जाती है। ऐसी स्थिति में केवल संचयन से उपज वृद्धि नहीं की जा सकती है, इसके लिये अन्य कारकों का होना भी आवश्यक है। जलक्षेत्र में उर्वरकों का प्रयोग एवं इसकी मात्रा को सावधानीपूर्वक नियत करना चाहिये। इसकी नियत मात्रा को जल में डालना चाहिये जो जलक्षेत्र में उपलब्ध पोषक तत्वों जैसे, नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस, आंकलित मूल उत्पादकता एवं संग्रहण घनत्व जैसे कारकों पर निर्भर करता है। स्थानीय तौर पर उपलब्ध कृषि अथवा पशुपालन क्षेत्र से बहने वाले अपशिष्ट जल को भी उर्वरक के तौर पर प्रयोग कर इस मछली पालन को सस्ता एवं टिकाऊ बनाया जा सकता है। बाहर से किसी प्रकार के उर्वरक के स्थान पर तलछट की मिट्टी में उपस्थित पोषक तत्वों को रेकिंग पद्धति (इस पद्धति में तलछट की मिट्टी को जाल चलाकर ऊपर–नीचे करते हैं) द्वारा पादप प्लवकों को दिया जा सकता है। इसमें पौधों में उपस्थित पोषक तत्वों का समावेश रहता है जिससे मछलियों का पोषण अच्छा होता है। मत्स्य उत्पादन वृद्धि के लिये जलक्षेत्र को जलीय पौधों से मुक्त रखना भी एक उपाय है। ये जलीय पौधें जल के पोषक तत्वों को ग्रहण कर लेते हैं जिससे पादप प्लवकों की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है।

➢ मत्स्य आवास संवर्धन

इसके अंतर्गत मछलियों के वास स्थान को उन्नत करने तथा कृत्रिम वासस्थान बनाने संबंधी तकनीक में वृद्धि करना है। इससे पेरिफायटन उत्पादन, मछलियों के प्रजनन तथा भोजन के लिये सुरक्षित स्थान बनाने में सहायता मिलती है और मत्स्य उपज में बढ़ोतरी होती है।

➢ प्रबंधन तकनीक को उन्नत बनाना

जलक्षेत्र में प्रबंधन तकनीकों में परिवर्तन अथवा विकास करने से इसकी आर्थिक गुणवत्ता बढ़ती है। इससे अंतर्गत कई उपाय जैसे प्रग्रहण–सह–पालन मात्स्यिकी, मनोरंजन एवं पर्यटन की दृष्टि से मत्स्ययन का विकास, मात्स्यिकी हेतु संरक्षित क्षेत्रों का विकास तथा प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण आदि लागू किया जा सकता है। साथ ही, जलक्षेत्रों के स्वामित्व संबंधी पहलुओं पर विचार करना चाहिये कि जलक्षेत्र का प्रबंधन निजी तौर पर अथवा सहकारी समितियों के द्वारा किया जाय।

➢ पालन आधारित मात्स्यिकी

पालन आधारित मात्स्यिकी का अर्थ है – खुला जल क्षेत्रों में मछलियों के संचयन द्वारा मत्स्य उपज करना (दास व अन्य, 2014)। यह प्रबंधन पद्धति बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र, छोटे जलाशय अथवा साझा जलनिकायों के लिये उपयुक्त माने जाते है क्योंकि इन जलक्षेत्रों में मछलियों की संख्या अपेक्षित परिमाण से कम होती है। इस प्रबंधन तकनीक का उद्देश्य मछलियों का संचयन एवं पुनर्ग्रहण (recapture) है। पालन आधारित मात्स्यिकी के अंतर्गत मछलियों का विकास संचयन घनत्व तथा उनकी उत्तरजीविता संचयित मछलियों के आकार पर निर्भर करती है। इस पालन के लिये उत्तरदायी कारक हैं – (1) संग्रहण के समय मछली का आकार, (2) संचयन धनत्व, (3) मत्स्ययन प्रयास, (4) पकड़ने के समय मछली का आकार (5) प्रजाति प्रबंधन, (6) प्रजाति चयन एवं (7) मत्स्ययन गियर का चयन।

➤ घेरे में मछली पालन

चित्र : पेन क्षेत्र में मत्स्य कृषि

घेरे में मछली पालन (पेन एवं पिंजरा क्षेत्र में मछली पालन) एक ऐसी तकनीक है जिसमें मत्स्य बीजों का पालन एक घिरे हुये क्षेत्र में बेहतर अतिजीविता तथा इनको बेचने के आकार तक बड़ा करने तक किया जाता है। देश के आर्द्रक्षेत्रों एवं जलाशयों के लिये अपेक्षित मात्रा में मत्स्य बीजों की आपूर्ति नहीं होने के कारण अधिक मांग वाली एवं महंगी बिकने वाली मत्स्य प्रजातियों का मत्स्य बीज उत्पादन संभव नहीं होता है, इसलिये पेन एवं पिंजरा में मत्स्य पालन द्वारा इन जलक्षेत्रों के लिये मत्स्य बीज का उत्पादन किया जा सकता है। यह प्रणाली अल्पावधि वाली होती है तथा इसकी लागत मूल्य भी कम होती है। इससे आर्द्रक्षेत्र एवं जलाशयों में दीर्घकालिक मात्स्यिकी संवर्धन को बढ़ावा मिलेगा। आर्द्रक्षेत्रों एवं जलाशयों में प्रबंधन उपायों जैसे मत्स्य संचयन की देखरेख, कृत्रिम भोजन को जलक्षेत्र में डालना, जलक्षेत्र में परभक्षी प्रजातियों के प्रवेश को रोकना, प्रयोजनानुसार मत्स्य प्रग्रहण आदि पद्धतियों के प्रयोग से प्रति इकाई उपज वृद्धि द्वारा दीर्घकालिक तौर पर मछली उत्पादन संभव हो सकता है। इसके लिये आर्द्रक्षेत्रों एवं जलाशयों के छिछले क्षेत्र में पेनक्षेत्र लगाना उपयुक्त है। भाकृअनुप–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान ने पेन एवं पिंजरा पालन तकनीक को विकसित कर असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा मणिपुर राज्यों के जलाशयों और आर्द्रक्षेत्रों में सफल परीक्षण किया है और इन राज्यों में यह प्रचलित भी हो रहा है। पेन क्षेत्र लगाने के लिये सस्ते तौर पर उपलब्ध वस्तुओं की आवश्यकता होती है, जैसे– बांस के खम्भे, बेंत तथा लकड़ी के कुन्दे आदि। हालांकि जलाशय में मत्स्य उपज वृद्धि में इन तकनीकों की विशेष भूमिका है पर इनमें कुछ सुधार की भी आवश्यकता है। हाल ही में, राष्ट्रीय मात्स्यिकी विकास बोर्ड, हैदराबाद ने भाकृअनुप–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान तथा राजीव गाँधी जलकृषि केन्द्र, तमिलनाडू के सहयोग से जलाशयों में पिंजरों की निर्धारित संख्या संबंधी दिशा–निर्देश जारी किया है जिसे तालिका 3 में दिखाया गया है।

चित्र : झारखंड के चांदिल जलाशय में पिंजरा क्षेत्र में मछली पालन तकनीक

घेरे में मत्स्य पालन से लाभ :

- उपलब्ध जलक्षेत्र का संपूर्ण उपयोग करके मत्स्य उपज वृद्धि में।
- अधिक संख्या में अंगुलिका पालन से इस कृषि की लागत मूल्य कम होती है।
- ट्रोफिक संरचना एवं इसकी कार्यों का संपूर्णतः उपयोग।
- अपरद ग्रसित जलक्षेत्रों का प्रभावी उपयोग।
- पेड़ों के ठूठ तथा शिलाखण्डों के कारण जिन जलनिकायों में वाइल्ड मछलियों की कृषि संभव नहीं है, उनमें घेरे में मत्स्य पालन करना उपयुक्त होगा।
- घेरे में संचयन के कारण मत्स्य फार्मों तथा स्थलीय स्रोत पर मात्स्यिकी दबाव का कम होना।
- खुला जलक्षेत्रों में संचयन का परिमाप सटीक होने के कारण मछलियों का संग्रहण सरल, शीघ्र एवं निश्चित्।
- संचयित मछलियों के भोजन, विकास तथा स्वास्थ्य के निरीक्षण में आसानी।
- अप्रत्यक्ष तौर पर आजीविका के अवसर उपलब्ध कराना।

आर्द्रक्षेत्रों एवं जलाशयों के मात्स्यिकी विकास में तकनीकों का प्रभाव

पालन आधारित मात्स्यिकी के अंतर्गत कई प्रकार के संवर्धन किये जाते हैं–भंडार संवर्धन, प्रजाति संवर्धन, पर्यावरण संवर्धन तथा तकनीक संवर्धन। इन पालन तकनीकों को अंतर्स्थलीय अर्द्ध–खुले अथवा बंद जलक्षेत्रों जैसे, झील, जलाशय और आर्द्रक्षेत्र में मात्स्यिकी संभावनाओं को अर्जित करने के लिये प्रयोग किया जाता है (सुगुणन्, 2011)। इसी प्रकार, अप्रयुक्त झीलों, जलाशयों तथा आर्द्रक्षेत्रों में इस पालन के प्रयोग से मत्स्य उपज में वृद्धि की जा सकती है। इससे प्रोटीन युक्त भोजन एवं खाद्य सुरक्षा के साथ आजीविका के साधन तथा सामाजिक–आर्थिक विकास में भी सहायता मिलेगी। इस पद्धति का लाभ यह है कि इसमें किसी प्रकार के रसायनिक तत्व, कृत्रिम भोजन, मत्स्य आवास में परिवर्तन नहीं करना पड़ता है। यह तकनीक पर्यावरण–उन्मुख है तथा इसकी लागत मूल्य भी कम होती है तथा स्थानीय मछुआरों इसे आसानी से उपयोग कर सकते है। इसका लाभ अधिक से अधिक लोगों, विशेषकर निर्धन मछुआरों को मिलता है। जलक्षेत्र में नियमित रूप से मत्स्ययन करने तथा जाल चलाने से तलछट में अपरद का जमाव नहीं होता है। नील क्रांति के

तालिका 3: जलाशयों में पिंजरों की निर्धारित संख्या (सौजन्य–पशुपालन, डेयरी एवं मत्स्य पालन विभाग, 2016)

जलाशयी क्षेत्र (हे0)	पिंजरों की निर्धारित संख्या (एकल अथवा पिंजरों की बैटरी)
1000 हे0 से कम	पिंजरा पालन हेतु अप्रयुक्त
1001 से 2000 हे0 तक	500
2001 से 3000 हे0 तक	1000
3001 से 4000 हे0 तक	1500
4001 से 5000 हे0 तक	1900
5001 से 10000 हे0 तक	3000
10000 हे0 से अधिक	5000

उद्देश्यों की प्राप्ति में पालन आधारित मात्स्यिकी की विशेष भूमिका है जो पिछले कुछ वर्षों से बहुत आशाजनक सिद्ध हुआ है। भाकृअनुप 2011 के रिपोर्ट के अनुसार, द्वितीय नील क्रांति के लिये वर्ष 2020 तक देश में मत्स्य उत्पादन का लक्ष्य 130 लाख टन रखा गया है। पालन आधारित मात्स्यिकी तकनीकों के प्रयोग से में छोटे जलाशयों, अलियार, चुलियार, मारकनहाली तथा गुलरिया का मत्स्य उत्पादन 5.5–80 कि0ग्रा0 प्रति हे0 प्रति वर्ष से बढ़कर 75–316 कि0ग्रा0 प्रति हे0 प्रति वर्ष हो गया जिसे निम्नलिखित तालिका में दिखाया गया है।

तालिका 4: जलाशयों में पालन मात्स्यिकी द्वारा मत्स्य उत्पादन वृद्धि

क्रम सं.	जलाशय का नाम	क्षेत्रफल (हे0)	संग्रहण दर (सं0/हे0)	संग्रहण पूर्व मत्स्य उपज (कि0ग्रा0/हे0)	संग्रहण पश्चात् मत्स्य उपज (कि0ग्रा0/हे0)
1.	अलियार	650	353	77	194
2.	चुलियार	159	937	80	316
3.	मारकनहाली	731	400	5.5	75
4.	गुलरिया	300	517	10	150

पश्चिम बंगाल के आर्द्रक्षत्रों में वर्ष 1994–95 से वर्ष 1997–98 में मत्स्य उत्पादन 40 से 1450 कि0ग्रा0 प्रति हे0 प्रति वर्ष, असम में वर्ष 1994–98 से वर्ष 2000–07 में मत्स्य उत्पादन 125 से 950 कि0ग्रा0 प्रति हे0 प्रति वर्ष तथा बिहार में वर्ष 1990–95 से वर्ष 2000–06 में मत्स्य उत्पादन 180 से 1700 कि0ग्रा0 प्रति हे0 प्रति वर्ष दर्ज किया गया। इनके अलावा, पेन पालन तकनीक के प्रयोग से असम के आर्द्रक्षेत्रों में मत्स्य उत्पादन में वृद्धि हुई है। जैसे, असम के आर्द्रक्षेत्रों, हरिभांगा, दमाल, रौमारी तथा पुथिमारी का मछली उत्पादन 300, 417, 425 तथा 125 कि0ग्रा0 प्रति हे0 प्रति वर्ष से बढ़कर क्रमशः 1050, 1030, 850 तथा 415 कि0ग्रा0 प्रति हे0 प्रति वर्ष हो गया (चन्द्रा व अन्य 2013)।

नदीय मात्स्यिकी प्रबंधन

नदीय मात्स्यिकी संपूर्णतः प्रग्रहण मात्स्यिकी पर निर्भरशील है। पर यह देखा जा रहा है कि नदीय क्षेत्रों में अधिक मांग वाली मछलियों की संख्या घटने लगी है। इन क्षेत्रों में अधिकतर विदेशी मत्स्य प्रजातियों का उत्पादन होने लगा हैं जिनकी मांग अधिक नहीं होती है। नदीय जैवविविधता में ह्रास के कारणों में से प्रदूषण, जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन, विनष्टकारी मत्स्यन पद्धतियां तथा जलक्षेत्रों में विदेशी प्रजातियों की

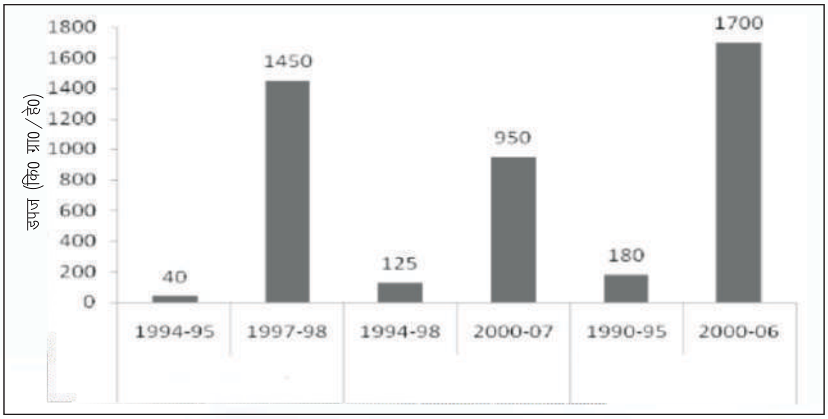

उपस्थिति आदि मुख्य हैं। इससे जलक्षेत्रों में उपयोगी मछलियों का संख्या दिन–प्रति–दिन घट रही है और मत्स्य जैवविविधता में ह्रास हो रहा है। इस समस्या के निराकरण के लिये निम्नलिखित प्रबंधन उपाय किया जाना चाहिये –

- नदियों में मत्स्य बीजों/अंगुलिकाओं का विसरण (रैंचिंग) द्वारा

संकटग्रस्त मत्स्य प्रजातियों को कृत्रिम प्रजनन तकनीक तथा व्यावसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण देशी मछलियों को नदियों में मत्स्य बीजों/अंगुलिकाओं का विसरण (रैंचिंग) द्वारा इनके उत्पादन की कमी को पूरा किया जा सकता है। रैंचिंग क्षेत्र का चयन नदी के आसपास करना चाहिये जिससे इनके विसरण के पश्चात् अधिक से अधिक मछलियों को पकड़ने से निषेध किया जा सके। हालांकि मात्स्यिकी ह्रास रोकने के लिये केवल रैंचिंग प्रक्रिया पर्याप्त नहीं है, इसके साथ मछलियों की पकड़ एवं उनकी लैंडिंग क्षेत्र का नियमित निरीक्षण भी आवश्यक है। मात्स्यिकी के पुनरूद्धार के लिये रैंचिंग प्रक्रिया की सफलता मत्स्य उपज के रूप में दर्शाता है।

- संरक्षित क्षेत्र तैयार करना

नदियों के कुछ भागों को संरक्षित क्षेत्र घोषित करना चाहिये जिससे नदीय मात्स्यिकी संसाधनों के उत्तम प्रबंधन हेतु संरक्षण उपायों को प्रभावी तौर पर क्रियान्वित किया जा सके। इससे संरक्षित क्षेत्र में मछलियों का प्रजनन एवं तरूण मछलियों की परिपक्वता एवं वृद्धि प्राकृतिक परिवेश में संभव हो सकेगा। नियंत्रित क्षेत्र में स्वस्थ पारिस्थितिकी की उपस्थिति मछलियों की उत्तरजीविता में वृद्धि करेगी।

- मत्स्ययन हेतु निषेध अवधि का पालन करना

मछलियों के पकड़ पर निषेध अवधि का पालन एक प्रभावी प्रबंधन तकनीक है। इसके अंतर्गत एक निर्धारित क्षेत्र में निर्धारित अवधि तक मछलियों के लिये संरक्षित क्षेत्र के रूप में घोषित कर वहां मत्स्ययन पर रोक लगा दिया जाता हैं जिससे मछलियों का अंडजनन और अभिगमन एवं भोजन आदि सरलता एवं निर्विघ्न तौर पर हो सके। निषेध अवधि के पश्चात् मछुआरें मछली पकड़ सकते हैं। निषेध अवधि उस समय के लिये निश्चित् करना चाहिये जब अधिक से अधिक मछलियों का अंडजनन होता है।

- जाल छिद्रों का नियमन

तरूण एवं अंडजनन करने वाली मछलियों के अधिकतम दोहन को रोकने के लिये जाल छिद्रों का नियमन करना चाहिये। इस दिशा में संबद्ध अधिकारियों को दिशा–निर्देश तैयार करके मछुआरों को जागरूक करना चाहिये कि किस आकार की मछलियों को पकड़ना दीर्घकालिक मात्स्यिकी प्रबंधन के लिये लाभकारी होगा तथा उन्हें आजीविका के अन्य वैकल्पिक साधनों के बारे में भी बताना चाहिये।

- सह–प्रबंधन

नदियों के प्रबंधन में बहुल भागीदारी होती है। अतः सभी भागीदारों के बीच समन्वय स्थापित कर नदीय मात्स्यिकी का प्रबंधन करना चाहिये। इस प्रकार की सहभागिता से लाभ प्राप्ति की संभावना अधिक होती है जो नदीय संसाधन स्रोत की विभिन्नता पर निर्भर करता है।

➢ जन–जागरूकता एवं शिक्षा

उपरोलिखित समस्त प्रबंधन उपाय तभी प्रभावी रूप से कार्यान्वित होंगे जब नदीय मात्स्यिकी से जुड़े मछुआरे अन्य सभी भागीदारों की दीर्घकालिक मात्स्यिकी हेतु मछलियों के संरक्षण, प्रबंधन उपाय तथा सरकारी दिशा–निर्देशों के प्रति जागरूक होगें तथा इसके लिये सचेष्ट प्रयास करेंगे।

उपसंहार

जलाशयों के लिये उत्तम प्रबंधन तकनीक के अंतर्गत छोटे जलाशयों एवं आर्द्रक्षेत्रों के लिये ''पालन आधारित मात्स्यिकी'' को उपयुक्त माना जाता है जबकि मध्यम और बड़े जलाशयो के लिये मत्स्य स्टॉक/प्रजातियों का संवर्धन तकनीक का प्रयोग किया जाता है। जलाशयों से ईष्टतम मत्स्य उपज प्राप्त करने के लिये उत्तम मत्स्य बीज, सटीक घनत्व, उपयुक्त समय तथा 100 मि0मी0 से कम आकार वाली मत्स्य बीजों का संग्रहण करना चाहिये। पर सफलतम मत्स्य पालन के लिये संबंधित राज्य सरकारी विभागों, स्थानीय मछुआरों, भागीदारों तथा दिशा–निर्देशों के बीच सही समन्वयन आवश्यक है। मात्स्यिकी संबंधी सरकारी योजना नीतियों के तहत मत्स्य बीज उत्पादन से मत्स्य विपणन संबंधी जानकारियों का विस्तृत रूप से उल्लेख करना उचित रहेगा।

मात्स्यिकी संसाधनों के सफल प्रबंधन हेतु प्रमुख भागीदारों का प्रभावी सहयोग आवश्यक है। इसके लिये स्थल एवं जल प्रबंधन तथा आर्थिक विकास क्षेत्र, ऊर्जा, व्यापार एवं कृषि के बीच उचित समन्वयन होना चाहिये तथा जलकृषि से जुड़े क्षेत्र जैसे जल आपूर्ति, कृषि, उद्योग, वन्यजीव, पर्यटन आदि के हितों की रक्षा भी होना चाहिये।

संस्थान के अध्ययन के अनुसार, पेन एवं पिंजरा में मत्स्य पालन तकनीक का सफल कार्यान्वयन हो रहा है। इनसे दीर्घकालिक मत्स्य उत्पादन तथा आजीविका के लिये इससे जुड़े कुछ विषयों जैसे, संग्रहण सामग्री, पेन एवं पिंजरा लगाने के लिये टिकाऊ, पर्यावरण–उन्मुख एवं सस्ती चीजों की उपलब्धता, सांस्थानिक प्रबंधन एवं संचालन तथा भागीदारों के बीच संसाधनों के लिये विरोध आदि पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक है।

नदीय संसाधनों का प्रबंधन के लिये संरक्षण, सह–प्रबंधन, जन–जागरूकता तथा शिक्षा आदि पहलुओं के साथ इनमें प्रदूषण के लिये उत्तरदायी कारकों पर ध्यान देना आवश्यक है। रैंचिग का उद्देश्य मात्स्यिकी ह्रास को रोकने के साथ मत्स्य प्रजातियों का संरक्षण भी होना चाहिये क्योंकि केवल रैंचिंग मात्र से कमतर होती मात्स्यिकी का पुनरूत्थान नहीं किया जा सकता है। नदीय मात्स्यिकी प्रबंधन में हमारा ध्यान जलजीव पालन पर न होकर मुख्य रूप से विभिन्न देशी मत्स्य प्रजातियों का संरक्षण होना चाहिये। अतः मत्स्य उत्पादन वृद्धि की दिशा में हमारा ध्येय महत्वपूर्ण विषयों जैसे मात्स्यिकी प्रबंधन, प्रदूषण के कारण संकटप्राय देशी प्रजातियों का संरक्षण, मछलियों के अधिकतम दोहन को रोकना, मत्स्य आवास में ह्रास के कारणों का पता लगाना तथा विदेशी प्रजातियों के अतिक्रमण को रोकना आदि पर गंभीरता से विचार कर कार्य करना होना चाहिये।

जलवायु परिवर्तन एवं आर्द्रक्षेत्र मात्स्यिकी

गुंजन कर्नाटक, उत्तम कुमार सरकार, बसंत कुमार दास, सुनीता प्रसाद एवं कौशिक रॉय

आर्द्रक्षेत्र पृथ्वी पर सबसे अधिक उत्पादक पारिस्थितिक तंत्रों में से एक माने जाते हैं जो मानव समाज के लिए कई महत्वपूर्ण सेवाएं प्रदान करते हैं (तालिका 1)। आर्द्रक्षेत्र दुनिया की भूमि सतह में 6% और वैश्विक कार्बन पूल में 12% योगदान करते हैं तथा यह मात्स्यिकी का भी एक विशाल संसाधन हैं। ये जलीय और स्थलीय पारिस्थितिकी प्रणालियों के बीच संक्रमणकालीन क्षेत्र हैं जहां पानी का स्तर सतह पर या उसके निकट है या भूमि जल में डूबी हुई है। बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र धरती के "किडनी" के रूप में पारिस्थितिक सेवा कार्यों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आर्द्रक्षेत्र के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की विविध पारिस्थितिकी प्रणालियाँ जैसे झील, मैंगरूव वन, बाढ़कृत क्षेत्र, प्रवाल चट्टान आदि, शामिल हैं। यह क्षेत्र वन्यजीवों के लिए महत्वपूर्ण प्रजनन और नर्सरी क्षेत्र हैं और प्रवासी पक्षियों को शरण प्रदान करते हैं। एशिया में बहुत सारे मछुआरों की आबादी आज भी आजीविका के लिए इस तरह के पारिस्थितिक तंत्रों पर निर्भर है।

तालिका 1. आर्द्रक्षेत्र के महत्वपूर्ण कार्य, मूल्य एवं विशेषताएं

कार्य	मूल्य	विशेषताएं
• जल भंडारण • तूफान से सुरक्षा और बाढ़ निवारण • तटरेखा स्थिरीकरण • भूजल पुनर्भरण और निर्वहन • जल शुद्धीकरण • अवसादों, पोषक तत्वों • और प्रदूषकों का अवधारण • स्थानीय जलवायु विशेष रूप और वर्षा का स्थिरीकरण	• जल आपूर्ति – मात्रा और गुणवत्ता का रखरखाव • मात्स्यिकी एवं मछली पालन • कृषि – जलस्तर का रखरखाव के माध्यम से चरागाह • लकड़ी का उत्पादन • ऊर्जा स्रोत जैसे पीट और वनस्पति • वन्यजीव संसाधन • मनोरंजन और पर्यटन के अवसर	• जैविक विविधता: विभिन्न प्रकार एवं प्रजातियां के पक्षीवृन्दः जलपक्षी, मछली, सर्वणशील जीव, पादप प्रजातियां, सूक्ष्मजीव एवं प्लवक इत्यादि • सांस्कृतिक विरासत: परिदृश्य, वन्यजीव और स्थानीय परंपराएं

भारत में बाढ़कृत आर्द्रक्षेत्र 5.54 लाख हेक्टेयर में फैले हुए हैं और उनका राज्यवार वितरण और विवरण तालिका 2 में दर्शाया गया है। अधिकांश अन्तर्स्थलीय आर्द्रक्षेत्र अप्रत्यक्ष रूप से प्रमुख नदियों जैसे गंगा, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी और तापी पर निर्भर हैं। इनमे लगभग 85 जाति तथा 33 कुलों की मछलिया पायी जाती हैं। जैव विविधता संरक्षण के अलावा ये झीलें मानव जाति को कई प्रकार की सेवाएं प्रदान करती हैं लेकिन वर्तमान में अत्यधिक दोहन, अतिक्रमण एवं विकृतिकरण के कारण इनकी पारिस्थितिकी काफी दबाव में हैं (चित्र 1)। भारत में अब तक केवल 26 आर्द्रक्षेत्रों को रामसर स्थलों के रूप में नामित किया गया है। हालांकि नीतिगत प्रक्रिया में कई ऐसे दुर्लभ क्षेत्रों पर ध्यान नहीं दिया जाता है, नतीजतन, आर्द्रक्षेत्र शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, और बढ़ी आर्थिक गतिविधियों के कारण लुप्त होने की कगार पर हैं।

तालिका 2 भारतीय आर्द्र क्षेत्र एवं उनका राज्यवार वितरण और विवरण

प्रदेश	क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर)	स्थानीय नाम
उत्तर प्रदेश	152000	ताल, झील
बिहार	24000	मौन, चौर
पश्चिम बंगाल	42500	बील
अरूणाचल प्रदेश	2500	बील
असम	100000	पात
मणिपुर	16500	बील
मेघालय	213	बील
त्रिपुरा	500	बील
कुल	554213	

चित्र : आर्द्रभूमि पारिस्थिकी एवं मात्स्यकी पतन के मुख्य कारण

भारत में जलवायु परिवर्तन एवं उसका आर्द्र भूमि पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन आर्द्रक्षेत्र पारिस्थितिक तंत्र में हानि और परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण संचालक है। भारतीय नेशनल कम्युनिकेशन (एनएटीसीओएम) द्वारा जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (यूएनएफसीसीसी) के अनुसार भारत में आने वाले जलवायु में हुए बदलावों से पिछली शताब्दी के दौरान सतह पर हवा का तापमान 0.4 डिग्री सेल्सियस बढ़ा है। क्षेत्रीय मानसून भिन्नताएं भी दर्ज की गई हैं, हालांकि सभी स्थानों पर मानसून के बारिश में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं देखा गया है। कम बारिश के

साथ अत्यधिक सूखे की प्रवृत्ति देखी गयी है। विशेष रूप से गुजरात और पश्चिम बंगाल राज्यों में गंभीर तूफान की घटनाओं में समग्र वृद्धि देखी गयी है । गंगा, सिंधु और ब्रह्मपुत्र जैसे बारहमासी नदियां के जल स्तर और प्रवाह जो पानी की स्रोत हैं, हिमालयी ग्लेशियरों के मंदी से प्रभावित हुए हैं, लेकिन यह प्रवृत्ति पूरी पर्वत श्रृंखला में सुसंगत नहीं है। जलवायु परिवर्तन परिदृश्य में शहरीकरण और आर्थिक विकास के कारण कई पारिस्थितिक और सामाजिक प्रणालियाँ अतिरिक्त तनाव एवं दबाव में हैं। प्रमुख नदी घाटियों में प्रभाव जलवायु परिवर्तन पर आईसीएआर–सीआईएफआरआई द्वारा किए गए अन्वेषण ने बारिश के मौसमी पैटर्न में बदलाव की सूचना दी है और प्रमुख नदियों के बेसिनों के विभिन्न स्टेशनों में न्यूनतम और अधिकतम तापमान के वार्षिक रुझानों में बदलाव की जानकारी दी है।

भारतीय उपमहाद्वीप में बढ़ता तापमान और कम होती वर्षा नदियों और उनसे जुड़े हुए आर्द्रक्षेत्रों के लिए संभावित संकट प्रस्तुत करता है। संभावित जलवायु परिवर्तन परिदृश्यों को देखते हुए अनुमान लगाया जा रहा है कि नदी की घाटियों में पानी की समस्या बढ़ जाएगी और वर्षा की अवधि और मात्रा में आए परिवर्तन तथा बढ़ते हुए तापमान के कारण कई नदियों की पारिस्थितिकी जैसे जल स्तर, प्रवाह दिशा, जैव विविधता अदि प्रभावित होंगे जो अंततः आर्द्रभूमि मात्स्यकी एवं पारिस्थिकी को प्रभावित करेंगे। यह आशंका जताई जाती है कि जलवायु परिवर्तन के कारण जल रसायन में आने वाले बदलाव के माध्यम से आर्द्रभूमि पर एक स्पष्ट प्रभाव पड़ेगा। जल अभाव के साथ साथ तापमान में वृद्धि से कारण जल प्रदूषण, विषाक्तता, कीट और बीमारी के वाहक, जलीय खर पतवार एवं शैवाल में अत्यधिक वृद्धि, घुलित ऑक्सीजन में कमी आदि आर्द्रभूमि में मछली की मृत्यु के कारक बन रहे हैं। यह अनुमान है की जलवायु परिवर्तन से प्रेरित 1% समुद्री जल स्तर बढ़ने से भारत की लगभग 84% तटीय आर्द्रभूमि एवं 13% खारा झीलें लुप्त हो जाएंगी, अधिकांश आर्द्रक्षेत्रों की कार्यात्मक क्षमता में कमी आएगी और कुछ आर्द्र स्थलों का भौगोलिक स्थान भी बदल सकता है। भविष्य में जलवायु परिदृश्यों के तहत विदेशी खर–पतवार एवं मछलियों अदि का प्रसार संभवतः बढ़ जाएगा, जिससे आर्द्रभूमि की मात्स्यिकी एवं पारिस्थिति पर और दबाव बढ़ेगा।

जलवायु परिवर्तन परिदृश्य में आर्द्रभूमि पर इसके प्रभाव की लिए शमन और अनुकूलन रणनीतियां

जलवायु परिवर्तन की अनिश्चितताओं को ध्यान में रखते हुए जलवायु अप्रभावित रणनीतियों का विकास करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे में आर्द्रक्षेत्रों की जैव विविधता, अखंडता, संरक्षण एवं पारिस्थितिकी प्रबंधन के लिए कुछ महत्वपूर्ण रणनीतियां इस प्रकार हैं: 1) आर्द्रभूमि में एकत्रित गाद हटाना, 2) लिंकेज चैनल खोलना और चौड़ा करना, 3) अतिरिक्त मानव जनित तनाव की रोकथाम, 4) जल की गुणवत्ता बनाए रखना, 5) विदेशी मछलियों एवं अन्य जीवों का नियंत्रण, 6) आर्द्रभूमि प्रबंधन के लिए पारिस्थितिकी तंत्र का

दृष्टिकोण, 7) मत्स्य बीज संग्रहण आधारित मात्स्यिकी, 8) पिंजरे और घेरे में मछली पालन, 9) गर्मियों में बाड़े में मत्स्य संरक्षण एवं पालन, 10) डीप पूल आधारित मत्स्य पालन, 11) जलीय पादप आधारित मात्स्यिकी एवं 12) सब्सट्रेट आधारित मत्स्य पालन। ये रणनीतियां आर्द्रक्षेत्रों को बदलती हुई जलवायु परिस्थितियों में भी महत्वपूर्ण आर्थिक एवं पारिस्थितिक सेवाएं प्रदान करने में सहायक होंगी।

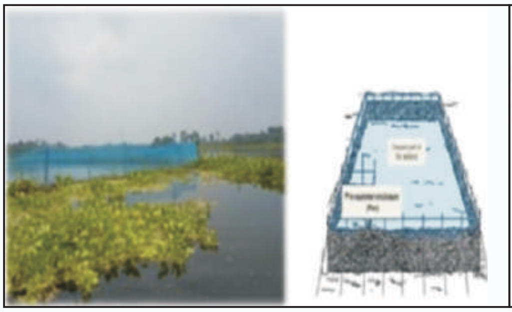

गर्मियों में गहराई वाले स्थान में बाड़े में मत्स्य पालन

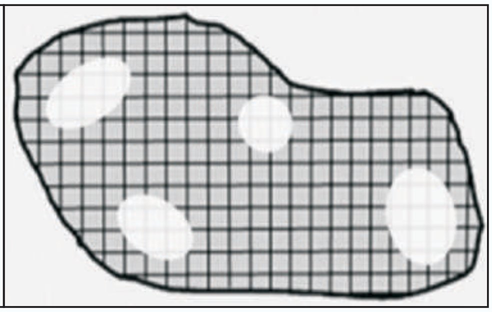

डीप पूल आधारित मत्स्य पालन

पेन में मत्स्य पालन

आर्द्रभूमि प्रबंधन के लिए पारिस्थितिकी तंत्र का दृष्टिकोण

पेन में मत्स्य पालन

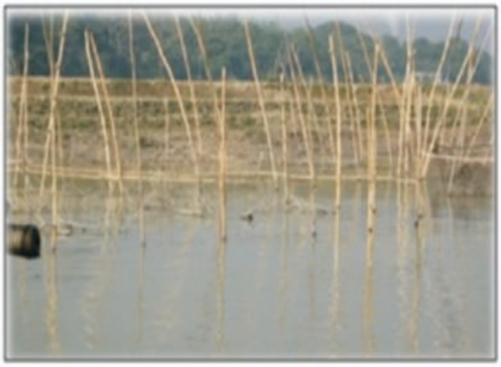

आर्द्रभूमि प्रबंधन के लिए पारिस्थितिकी तंत्र का दृष्टिकोण

निष्कर्ष

भारत की बड़ी आबादी जलवायु–संवेदनशील क्षेत्रों जैसे कृषि और वनों पर जीविका के लिए निर्भर करती है। आर्द्रक्षेत्र मानव जाति को कई पारिस्थितिक सेवाएं एवं वस्तुएं प्रदान करती हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण आए जल रसायन एवं अन्य मापदंडों में बदलाव के माध्यम से आर्द्रभूमि पर एक प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। आने वाले वर्षों में यह प्रवृत्ति बढ़ेगी और जलवायु परिवर्तन से आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी को और अधिक नुकसान होगा, जिससे गरीब मछुआरों एवं किसानों की आजीविका पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। जलवायु परिवर्तन से आर्द्रभूमि पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रति अनुकूली क्षमता को बढ़ाने के लिए शमन एवं अनुकूलन रणनीतियों का कार्यान्वयन आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन की अनिश्चितताओं को ध्यान में रखते हुए जलवायु रेज़ीलिएंट रणनीतियों का विकास करना आवश्यक है। आर्द्रभूमि जैव विविधता और अखंडता का संरक्षण, आर्द्रभूमि का नदियों से जोड़े रखना, आर्द्रभूमि से जमी हुई गाद हटाना, विदेशी जीवों एवं मछलियों का नियंत्रण इत्यादि, आर्द्रभूमि पारिस्थितिक प्रबंधन एवं संरक्षण में सुधार के लिए महत्वपूर्ण गतिविधियां हैं जो आर्द्रभूमि को परिवर्तन वाली जलवायु परिस्थितियों में भी महत्वपूर्ण आर्थिक एवं पारिस्थितिक सेवाएं प्रदान करने में सहायक होंगी। पिंजरे और घेरे में मछली पालन, सब्सट्रेट आधारित मात्स्यिकी एवं गहरा पूल मात्स्यिकी जैसी तकनीक जलवायु परिवर्तन परिदृश्य में मछुआरों कीअनुकूली क्षमता बढ़ाने में लाभदायक होंगी।

पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन का प्रारम्भ एवं विकास

कृपाल दत्त जोशी

हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र अनेकों प्राकृतिक भौगौलिक व जलवायु की जटिलताओं के लिए विख्यात हैं। इन्ही जटिलताओ के कारण पर्वतीय क्षेत्र की खेती, बागवानी, पशुपालन तथा मत्स्य पालन भी प्रभावित होते है । इसी कारण इस क्षेत्र में मत्स्य पालन विकास बहुत देर से प्रारंभ हो सका। यद्यपि पर्वतीय क्षेत्रों में परम्परागत मत्स्य पालन व्यवसाय का पूर्व इतिहास नहीं रहा हैए इसके कई कारण रहे है जिनमे से प्रमुखतया निम्न है :

1. मिट्टी में कंकड़ पत्थर तथा बालू की अधिक मात्रा होने के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में जल रिसाव अधिकतम मात्रा में होता है। जिस कारण यहा मैदानी भागों की तरह मत्स्य पालन योग्य प्राकृतिक तालाब उपलब्ध नहीं है।
2. उपरोक्त मृदीय जटिलताओं के कारण इन क्षेत्रों में सस्ते एवं उत्पादक कच्चे तालाब नहीं बनाये जा सकते है क्योकि जल रिसाव एक बहुत बड़ी समस्या है ।
3. कम तापमान तथा तापमान में अधिकतम उतार चढ़ाव के कारण जलीय संसाधनो की उत्पादकता बहुत कम है।
4. स्थानीय स्तर पर उपयुक्त पालन योग्य प्रजातियों का अभाव एक अन्य कारण हैए यद्यपि पर्वतीय क्षेत्रा के जलीय संसाधनो में उपलब्ध महाशीर एवं बर्फानी ट्राउट प्रजातियां अपनी विशिष्टताओं के कारण विख्यात हैंए लेकिन पालन अवस्था में इनकी वार्षिक वृद्धि दर बहुत कम होती है ।
5. इन समस्याओं के साथ–साथ इस विधा का क्षेत्र में उचित प्रचार व प्रसार न होना भी प्रमुख कारणों में से है ।
6. उपरोक्त भौगोलिक भूगर्भीय एवं मृदीय कारणों से पर्वतीय क्षेत्र के मत्स्य पालन व्यवसाय का विकास नहीं हो पाया । इसी कारण इस क्षेत्र में मछली की उपलब्धता नगण्य रहीए जिससे पर्वतीय क्षेत्र के अधिकांश लोगां में मछली को भोजन के रुप में ग्राहयता बहुत कम विकसित हो पायी ।

इन्ही जटिलताओं के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन का प्रारम्भ कृषि आधारित अन्य विधाओं की अपेक्षा काफी देर से हुआ। लेकिन अब यह क्षेत्र भी विकास के पथ पर अग्रसर हो रहा है। पर्वतीय भाग में हो रहे क्रमिक विकास के इतिहास को निम्नवत देखा जा सकता है :

पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन हेतु प्रजातियों का आगमन

भूरी ट्राउट

पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्यिकी गतिविधियों का प्रारम्भ ट्राउट के आयात के समय से माना जा सकता है । अनेकों जटिलताओं एवं समस्याओं के बावजूद इस क्षेत्र में ट्राउट पालन हेतु वर्ष 1863 से प्रयास किये गये थे। वर्ष

भूरी ट्राउट (साल्मो ट्रटा फेरियो)

1983 में सर डांसिस डे द्वारा भूरी ट्राउट (साल्मो ट्रटा फेरियो) तथा लौक–लेवन ट्राउट (साल्मो लवेन्सिस) के अण्डे एवं जीरों को नीलगिरी में स्थापित करने का प्रयास किया गया। लेकिन परिवहन अवस्था में तापमान की वृद्धि के कारण समस्त अण्डे/जीरे रास्ते में ही समाप्त हो गये। वर्ष 1899 में एफ. जे. मिचेल ने इंग्लैण्ड से भूरी ट्राउट के नयनयुक्त अण्डे हिमालय क्षेत्र में स्थापित करने का पुनः असफल प्रयास किया। जहाज में तापमान की अधिकता के कारण यह अण्डे भी जीवित नहीं रह पाये। वर्ष 1900 में पुनः मिचेल ने हावेटोनिन (स्काटलैण्ड) से भूरी ट्राउट के नयनयुक्त अण्डे कश्मीर स्थित हरवन तक सफलतापूर्वक पहुचाने व स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। इन्हीं अण्डो से विकसित प्रजनकों का हरवान में वर्ष 1905 में कृत्रिम प्रजनन कर बच्चे प्राप्त किये गये। इस तरह भारत में ट्राउट प्रजाति को स्थापित करने का श्रेय श्री एफ. जे. मिचेल को जाता है। वर्ष 1909–1910 में प्रारम्भिक असफलताओं के पश्चात नीलगिरी क्रीड़ा मत्स्य संगठन (नीलगिरी गेम एशोसियेशन) द्वारा ट्राउट बीज के सफलतापूर्व आयात हेतु श्री एच. सी. विल्सन की सेवाये ली। विल्सन के दिशा–निर्देशों के अनुसार वर्ष 1909–10 में नीलगिरी पर्वत श्रृंखला के अर्न्तगत अव लांच ट्राउट हैचरी का निर्माण किया गया तथा मिचेल द्वारा भूरी ट्राउट के स्थान पर वर्ष 1910 में न्यूजीलैण्ड से इन्द्रधनुषी ट्राउट के 50,000 नयनयुक्त अण्डे मंगाकर अवलांच हैचरी में विकसित किये तथा इन्द्र धनुषी ट्राउट को स्थानीय सदाबहार जालों में संचयित किया गया। वर्ष 1968 में विभिन्न इन्द्रधनुषी ट्राउट प्रजातियों के साथ–साथ 10,000 भूरी ट्राउट के अण्डे जापान से लाकर अवलांच हैचरी में पाले गये।

इन्द्रधनुषी ट्राउट

सर्वप्रथम इन्द्रधनुषी ट्राउट वर्ष 1904 में इंग्लैण्ड से हरवान लाये गये भूरी ट्राउट बीज के साथ कुछ अण्डे इन्द्रधनुषी ट्राउट (साल्मो गार्डनेरी ट्रिडियस) के भी आ गये थे, लेकिन इनका स्फुटन नहीं हो पाया। वर्ष 1912 में बिस्टल वाटर वर्क्स इंग्लैण्ड द्वारा भेजे गये इन्द्रधनुषी ट्राउट के अण्डों का मिचेल द्वारा सफलतापूर्वक विकास किया गया। कश्मीर से वर्ष 1919 में 5000 इन्द्रधनुषी ट्राउट अण्डे कुलू घाटी स्थित महिली हैचरी में स्थापित किये गये जिनका वर्ष 1922 में प्रजनन कराया गया, लेकिन संक्रमण एवं रोगग्रस्तता के कारण यह स्टाक बाद में समाप्त हो गया ।

अन्य ट्राउट प्रजातियों का आगमन

भारतवर्ष में भूरी तथा इन्द्रधनुषी ट्राउट को विदेशो से लाकर स्थापित करने के बहुत प्रयास किये गये जिनके फलस्वरुप भूरी ट्राउट प्रजाति यहां के पर्वतीय क्षेत्रों के कुछ नदियों तथा सदाबहार नालों में पायी जा रही है तथा मत्स्य आखेटकों को लुभा रही है । इन्द्रधनुषी ट्राउट भी देश के विभिन्न पर्वतीय राज्यों में स्थापित 30 से अधिक पर्वतीय मत्स्य हैचरी अथवा मत्स्य प्रक्षेत्रों में पाली जा रही है । इनमें से अनेकों हैचरी में पालन के

उद्देश्य से इन्द्रधनुषी ट्राउट तथा क्रीड़ा मत्स्य के रुप में नदियों व सदाबहार नालों से संचयित करने हेतु भूरी ट्राउट का बीज उत्पादन किया जाता है ।

भूरी तथा इन्द्रधनुषी ट्राउट के अतिरिक्त ट्राउट परिवार की कुछ अन्य प्रजातियां भी भारतवर्ष के कुछ पर्वतीय भागों में लायी गयी थी लेकिन यह प्रजातियां सफल नहीं हो पायी। ये प्रजातियां निम्न थी :

ईस्टर्न ब्रुक ट्राउट (साल्मो ट्रटा फेरियो)

1. ईस्टर्न ब्रुक ट्राउट (साल्वेलिनस फोन्टिनेलिस) विगत 1959–1970 की अवधि में कनाडा से ईस्टर्न ब्रुक ट्राउट प्रजाति को कश्मीर स्थित ट्राउट हैचरियों में स्थापित करने के प्रयास किये गये। यद्यपि यह प्रजाति हैचरियों में सफलता पूर्वक विकसित की गयी लेकिन अण्डजनन क्षमता में कमी तथा निषेचित अण्डो की न्यूनतम जीवितता तथा तापमान, प्रदूषण तथा बीमारियों के प्रति अधिक संवेदनशील होने के कारण यह प्रजाति भारतीय परिवेश में सफल नहीं हो पायी ।
2. स्पेलेक ट्राउट : यह प्रजाति लेक ट्राउट (साल्वेलिनस तथा ईस्टर्न ब्रुक ट्राउट साल्वेलिनस फोन्टिनेलिस) के संकरण से बनती है। साल्वेलिनस फोन्टिनेलिस के साथ ही कनाडा से इस प्रजाति को भी कश्मीर स्थित ट्राउट हैचरियों तथा मत्स्य प्रक्षेत्रों में लाया गया था। स्पेलक ट्राउट हरवान हैचरी में 3 वर्ष में 1000 ग्राम की हो गयी लेकिन 5 वर्ष की अवस्था तक भी यह प्रजनन हेतु परिपक्व नहीं हो पायी। इसके पश्चात विभिन्न बीमारियों के संक्रमण के कारण यह किस्म यहां के वातावरण में अधिक समय तक जीवित नहीं रह पायी ।
3. अटलांटिक सामन (साल्मो सलर) उपरोक्त के साथ ही इस प्रजाति को उत्तरी अमेरिका से आयात कर कश्मीर स्थित मत्स्य प्रक्षेत्रों एवं हैचरियों में डाला गया। यह प्रजाति जीवित तो रही लेकिन सफल प्रजनन न हो पाने के कारण मात्स्यिकी हेतु सफल नहीं रही।
4. रेनबो ट्राउट की स्टील हेड (साल्मो गाडर्डनेरी इरिडियस तथा साल्मो गाइर्डनेरी) खस्ता किस्में भी भारतीय परिवेश में अधिक सफल नहीं रही ।
5. कोकानी सामन (ओन्कोरिंकस नरका) – यह प्रजाति भी भारतीय वातावरण में अधिक सफल नहीं हो पायी। वर्ष 1968 में 10000 अण्डे जापान से लाकर अवलांच हैचरी में पालने के प्रयास किये गये।
6. टाइगर ट्राउट यह मादा भूरी ट्राउट तथा नर इर्स्टन ब्रुक ट्राउट के प्रजनन से बनायी गयी संकर किस्म वर्ष 1968 में अवलांच हैचरी में लायी गयी।

ट्राउट मछलियों को भारत में लाने के समस्त प्रयास तत्कालीन विभिन्न रियासतों के राजाओं तथा क्षेत्र में स्थित चाय कम्पनियों के द्वारा किये गये।

कामन कार्प का आगमन

भूरी एवं इन्द्रधनुषी ट्राउट के पश्चात् भारतवर्ष के पर्वतीय क्षेत्रों में पालन के उद्देश्य से एक अन्य महत्वपूर्ण शीत जलीय प्रजाति कामन कार्प को आयातित किया गया। वर्ष 1939 में सर्वप्रथम कामन कार्प की उप प्रजाति मिरर कार्प (सिप्रिनस कार्पिको स्पीकुलरिस) को श्रीलंका से नीलगिरी पर्वतीय क्षेत्र में लाया गयाए यह उप प्रजाति वर्ष 1914 में परसिया से श्रीलंका लायी गयी थीए इस उप प्रजाति को वर्ष 1947 में उत्तरांचल (तत्कालीन उत्तर प्रदेश) की भवाली (जनपद – नैनीताल) स्थित मत्स्य हैचरी में संचयित किया गयाए तत्पश्चात भवाली हैचरी में मिरर कार्प के प्रजनन तैयार कर प्रजनन कराया गया तथा उत्पन्न बीज को स्थानीय एवं अन्य राज्यों तक पहुंचाया गया, भवाली हैचरी से मिरर कार्प बीज वर्ष 1952–1953 में नैनीताल की प्रमुख झीलों में संचयित किया गया। इस हैचरी में उत्पादित मिरर कार्प बीज तत्पश्चात हिमाचल प्रदेश ले जाया गया हिमाचल प्रदेश के विलासपुर तथा कांगड़ा स्थानों में कामन कार्प बीज उत्पादन इकाईयों की स्थापना की गयी । हिमाचल प्रदेश में मिरर कार्प की उपयोगिता को देखते हुए प्रदेश में उत्पादित 500 मिरर कार्प अंगुलिकायें वर्ष 1956 में कश्मीर स्थित डल झील में संचयित की गयी।

कश्मीर घाटी में विभिन्न जल श्रोत आपस में जुड़े हुए है जिस कारण मिरर कार्प इन समस्त श्रोतों एवं झेलम नदी तक फैल गयी। हिमाचल प्रदेश से मिरर कार्प मणिपुर, मेघालय, सिक्किम तथा असम तक पहुंचायी गयी।

भारतवर्ष के पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन हेतु प्रारम्भिक प्रयास दो विभिन्न दिशाओं में हुए जहां तत्कालीन राजाओं तथा ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा ट्राउट प्रजातियों को विभिन्न उचित जलवायु युक्त स्थानों में स्थापित करने के प्रयास किये गयेए वहीं सामान्य वर्ग द्वारा प्रारम्भिक वर्षों में स्थानीय प्रजातियों का तथा तत्पश्चात कामन कार्प मछली को पालने के प्रयास किये गयेए यद्यपि प्रारम्भिक वर्षो में यह प्रयास उत्साहजनक नहीं रहे उत्तर पूर्वी राज्यों (अरुणाचल प्रदेश व मेघालय) के पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित सीढ़ीदार खेतों में धान के साथ कामन कार्प पालन काफी समय से प्रचलन में है ।

ग्रास एवं सिल्वर कार्प

भौगोलिक एवं जलवायु सम्बन्धित जटिलताओं के कारण पर्वतीय वातावरण में केवल शीत जलीय प्रजातियां ही जीवित रह पाती है एवं पनप सकती है। शीतजलीय मत्स्य प्रजातियों में भी स्थानीय महत्वपूर्ण प्रजातियां महाशीर एवं बर्फानी ट्राउट प्रजातियां कम वृद्धि दर के कारण पालन हेतु उपयोगी सिद्ध नहीं हो पाती हैए इसी कारण पालन के उद्देश्य से शीत जल की अभ्यस्त प्रजातियों जैसे भूरी व इन्द्रधनुषी ट्राउट, कामन कार्प एवं चीनी मूल की ग्रास व सिल्वर कार्प प्रजातियों को पालने हेतु उपयोग में लाया जाता है। सरल पालन पद्यति, शाकाहारी भोजन प्रवृत्ति, अपेक्षाकृत व्यापक तापमान ग्राहयता मिश्रित पालन हेतु ग्राहयता एवं अच्छी वार्षिक वृद्धि दर के कारण चीनी मूल की ग्रास एवं सिल्वर कार्प प्रजातियां पर्वतीय मत्स्य पालन में प्रचलित होती जा रही है ।

हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं में स्थित जल श्रोतों में चीनी मूल की ग्रास एवं सिल्वर कार्प मछलियों के पदार्पण तथा स्थापन के उचित प्रमाण नहीं मिलते है। लेकिन सिल्वर कार्प प्रजाति को हिमाचल प्रदेश स्थित गोविन्द सागर जलाशय में प्रवेश एवं स्थापन एक रोचक घटना के रुप में जानी जाती है वर्ष 1971 में हिमाचल प्रदेश के देवली मत्स्य प्रक्षेत्र से 47 सिल्वर कार्प मछलियां जिनकी शारीरिक लम्बाई 290–530 मिमी. थी सतलुज नदी की बाढ़ के पानी में बहकर गोविन्द सागर जलाशय में पहुंच गयी। यह प्रजाति धीरे–धीरे जलाशय में स्थापित हो गयी। वर्ष 1977 में जलाशय के कुल मत्स्य उत्पादन का 10 प्रतिशत भाग सिल्वर कार्प मछलियों का हो गया। सिल्वर कार्प उत्पादन का प्रतिशत वर्ष 2004–2005 में जलाशय का 85 प्रतिशत तक पहुंच गया। कुल उत्पादन में अधिकतम योगदान के साथ–साथ सिल्वर कार्प द्वारा जलाशय से प्रति इकाई उत्पादन वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान रहाए यद्यपि सिल्वर कार्प के कारण जलाशय की स्थानीय प्रजातियां में क्रमिक ह्रास देखा गयाए जिनमें से कतला प्रमुख थी। वर्तमान समय में सिल्वर कार्प तथा ग्रास कार्प पर्वतीय मत्स्य पालन का हिस्सा बन चुकी है तथा यह प्रजातियां क्षेत्र के गोविन्द सागर जलाशय कुमाऊं की झीलों सहित अनेक जल संसाधनों में पायी जाती है। गोविन्द सागर के अतिरिक्त अन्य जल क्षेत्रों में सिल्वर कार्प अथवा ग्रास कार्प के स्थापित हो जाने में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

भारतीय मेजर कार्प का पर्वतीय क्षेत्रों में पदार्पण

मैदानी क्षेत्रों में पालन हेतु बहुउपयोगी तीन प्रजातियों, रोहू (लेबियो रोहिता), कतला (कातला कातला) एवं मृगल (सिरहीनस मृगाला) यूं तो पर्वतीय शीतल जल में जीवित नहीं रह पाती है, लेकिन फिर भी इन प्रजातियों को कुछ निचले पर्वतीय क्षेत्रों अथवा घाटियों में स्थित जल श्रोतों, मुख्यत: जलाशयों एवं झीलों में संचयित किया गया है, जिनमें से कुछ में जीवित रहती है तथा वृद्धि भी करती है, लेकिन फिर भी प्रजनन नहीं कर पाती हैं। इनको भारतीय पर्वतीय जलाशयों में संचयित करने हेतु प्रथम प्रयास वर्ष 1961–62 में किये गये थे जब रोहु, कतला एवं मृगला बीज हिमाचल प्रदेश स्थित गोविन्द सागर (16,867 हे.) जलाशय में संचयित किये गये थे। गोविन्द सागर जलाशय में भारतीय कार्प की मात्स्यिकी का अच्छा विकास हुआ तथा वर्ष 1975–76 से 1980–81 के बीच जलाशय से 202 टन से 366 टन प्रतिवर्ष तक भारतीय कार्प उत्पादन प्राप्त किया गया । लेकिन तत्पश्चात भारतीय कार्प उत्पादन में तीव्र गिरावट दर्ज की गयी। जिसका एक कारण सिल्वर कार्प की अधिक उपलब्धता बतायी जाती है। भारतीय मेजर कार्प प्रजातियां हिमाचल प्रदेश के एक अन्य जलाशय पोंग (24,529 हे.) में वर्ष 1983–84 से 1989–90 तक जलाशय से 100.5 टन से अधिकतम 491.9 टन तक भारतीय कार्प प्रजातियों का उत्पादन रहा जो जलाशय के कुल मत्स्य उत्पादन (469.9 टन से 797.4 टन) का 21.38 प्रतिशत से 61.65 प्रतिशत तक था, अन्य हिमालयी जल श्रोतो में भारतीय मेजर कार्प संचयित करने का प्रमाण नैनीताल जनपद स्थित झीलों का है। वर्ष 1977 में रोहू, कतला एवं मृगल बीज भीमताल झील (86.5 हे.) में डाला गया । तत्पश्चात पुन: वर्ष 1978 में 40,000 बीज डाला गया।

इस झील में इन प्रजातियों ने अच्छी शारीरिक वृद्धि की जिसकी पुष्टि अगस्त 1979 में झील से 2.0 कि-ग्रा. की रोहू मछली पकड़े जाने से होती है। लगभग इसी काल अवधि में सातताल‍ए नौकाचियाताल आदि झील में भी भारतीय मेजर कार्प संचयित की गयी सातताल झील से इनका उत्पादन 64.1 प्रतिशत तक पहुंच जाने के प्रमाण मिलते है।

यद्यपि पर्वतीय क्षेत्रों में 100 से अधिक मत्स्य प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से लोच प्रजाति की मछलियाँ बहुत छोटी जबकि महाशीर एवं गूंछ 50–150 कि.ग्रा. तक होती हैं। लेकिन पर्वतीय क्षेत्र की प्रजातियों की तालाबों में उचित बढ़वार नहीं हो पाती है, इसलिए इन क्षेत्रों में विदेशी प्रजातियों का पालन किया जाता है। चूँकि पर्वतीय क्षेत्रों की जलवायु भौगोलिक संरचना एवं ऊँचाई के अनुसार परिवर्तित होती हैए इसलिए एक मत्स्य पालन पद्यति सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए उचित नहीं होती है। अलग अलग जलवायु के लिए भिन्न प्रजाति तथा पालन तकनीक की आवश्यकता होती है। इसी कारण वर्तमान समय में पर्वतीय क्षेत्र में भौगोलिक संरचना के अनुसार त्रि–स्तरीय मत्स्य पालन की तकनीकियाँ उपलब्ध हैंए जो क्षेत्र विशेष की जलवायु एवं तापमान से निर्धारित हैं। इनके उपयोग से पर्वतीय क्षेत्र से मत्स्य उत्पादन में बांछित वृद्धि प्राप्त की जा सकती है ।

बाढ़कृत झील : संसाधन, चुनौतियाँ एवं प्रबंधन

अबसार आलम और जितेन्द्र कुमार

भारत में अपार अंतर्स्थलीय जल संसाधन (नदियों, नहरों, तालाबों, झीलों, जलाशयों, जलभराव व जलाच्छादित क्षेत्रों) उपलब्ध हैं। झीलें खुले जल संसाधनों के अनियंत्रित जल क्षेत्र की श्रेणी में आता हैं। भारत में बाढ़कृत झीलें व्यापक रूप से उत्तर प्रदेश, उत्तर बिहार, असम और पश्चिम बंगाल में मौजूद है। ब्रह्मपुत्र एवं गंगा के मध्य घाटियों में ऐसी झीलें पाई जाती हैं जिसे हम बाढ़कृत झीलें कहते हैं। ये झीलें नदियों का एक अभिन्न हिस्सा हैं। नदी के प्रवाह में स्थायी परिवर्तन के कारण वे मुख्य धारा से कट जाती है। नदी में कई जगह रुकावट पैदा होने से जल जमा हो जाता है । इस प्रकार निर्मित बाढ़कृत झीलें, जिन्हें बिहार के स्थानीय भाषा में मान, चौर और पट, अर्थात पश्चिम बंगाल और असम क्षेत्र में इसे बील के नाम से जानते हैं।

भारत में बाढ़कृत झीलों का क्षेत्र लगभग 2.02 लाख हे. है। इस प्रकार की झीलें असम (1,00,000 हे.), पश्चिम बंगाल (42,500 हे.) तथा बिहार (40,000 हे.) में अत्यधिक है (तालिका संख्या 1)।

तालिका–1 भारत की बाढ़कृत झीलें

राज्य	स्थानीय नाम	क्षेत्र (हे.)
असम	बील	1,00,000
पश्चिम बंगाल	बील, चरहा और बोर	42,500
बिहार	मान, चौर और दहर	40,000
उत्तर प्रदेश	झील, बांध	1,52,000
कुल		2,02,213

(सौजन्य – सुगुणन, 1995)

1. झीलों का महत्व

माना जाता है कि झीलें एक अनोखी पारिस्थितिकी तंत्र को समर्थन करती हैं जो मानवता के लिए कई सेवाओं और वस्तुओं को उपलब्ध कराता है। पारिस्थितिकी तंत्र वस्तुओं में– सिंचाई के लिए पानी, मात्स्यिकी, चारा, ईंधन, फाइबर, जलापूर्ति एवं मनोरंजन और मुख्य सेवाएं जैसे– कार्बन जब्ती, बाढ़ नियंत्रण, भूजल पुनर्भरण, मृदा संरक्षण, विषत्ता प्रतिधारण, जलवायु विनियमन और जैव विविधता का रखरखाव शामिल है।

1.1 बहु–पानी उपयोगी सेवाएं

झीलें हमेशा से सार्वजनिक तथा बहु–उपयोगी रही है। झीलं जैसे– चिलिका (उड़ीसा), डल झील (जम्मू और कश्मीर), दीपर बील (असम), काबर ताल (बिहार), लोकतक (मणिपुर), नैनीताल (उत्तराखंड), मानसरोवर (गुजरात), वेमबानाद (केरल) इत्यादि लंबे समय से मात्स्यिकी, मनोरंजन, पर्यटन, सिंचाई और घरेलू जल आपूर्ति सेवाएँ प्रदान कर रहा है। इनका योगदान भूजल पुनर्भरण और विभिन्न जल जीवों की विविधता का रख–रखाव है। आधिकारिक अनुमानों के अनुसार, 2014 में भारत के सकल घरेलू उत्पाद और रोजगार के लिए पर्यटन का योगदान 5.92% और 9.24% क्रमशः था। यह आंकड़े झील पर्यटन के अनुभव का एक अहम् हिस्सा माना जा सकता है क्योंकि झीलों की मांग पर्यटक स्थल के रूप में निरंतर बढ़ रहा है । भारत में कुल मछली उत्पादन 10.07 मिलियन मीट्रिक टन है। अंतर्स्थलीय क्षेत्र का योगदान 65% है और इसमें झीलों का एक महत्वपूर्ण योगदान है। बाढ़ अच्छी गाद लाकर पोषक तत्वों से जमीन उपजाऊ बनाती है। मछलियों के अंडे और अंगुलिकाएं इसके साथ आती हैं, इनके वृद्धि के लिये यह जल अच्छा होता है। जमीन में नमी बनाए रखती है, मृदा और भूजल का पुनर्भरण करती है। बाढ़कृत मैदानी झीलों में अत्यधिक मात्रा में मत्स्य प्रजातियाँ मौजूद रहती हैं। अतः झीलें लाभदायक मात्स्यिकी के श्रोत हैं।

1.2 कार्बन पृथक्करण

झीलें कार्बन चक्र में एक अहम् भूमिका निभाती हैं। वैश्विक मिथेन (CH_4) के उत्सर्जन में झीलों का योगदान 40% है। झीलों में अन्य सभी स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र कि तुलना में सबसे अधिक कार्बन (C) घनत्व है और अपेक्षाकृत कार्बन डाइऑक्साइड को पृथक करने की क्षमता भी अधिक है। झीलें दुनिया के भूमि क्षेत्र का केवल 3–4% है परन्तु एक अनुमान के अनुसार झीलों में कुल अनुमानित वैश्विक कार्बन भंडारण के 1.5% ही प्रतिनिधित्व करता है जिसका 25–30% स्थलीय वनस्पति और मिट्टी के रूप में उपस्थित है।

1.3 जल शोधन और कचरे के विषहरण

कृषि अपवाह और शहरी क्षेत्रों से अनुपचारित सीवेज और अन्य अपशिष्ट के निर्वहन के माध्यम से झीलें प्रदूषित हो रहा है। झीलों मुख्यतः नदी तट झीलों, पोषक तत्व– नाइट्रेट और फॉस्फेट को जल प्रवाह के माध्यम से हटाता है ।

1.4 बाढ़ नियंत्रण

बाढ़कृत झीलें और बाढ़ के मैदानी कृषि भूमि, बाढ़ के दौरान पोषक तत्वों के परिवहन से उत्पादकता को बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । इस प्रकार प्राकृतिक बाढ़ की उपस्थिति होना लाखों लोगों की जीविका के लिए एक वरदान है। विशेष रूप से उन के लिए जो बाढ़कृत मैदानों पर कृषि, चरागाह और मछली उत्पादन के लिए निर्भर रहते है। झीलें जल के प्रवाह को धीमा करती हैं और बाढ़ की विनाशकारी प्रकृति को कम करती है।

तालिका–2 झीलों द्वारा प्रदानित पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं

सेवाएँ	टिप्पणियाँ और उदाहरण
प्रावधान	
भोजन	मछली, फल और अनाज का उत्पादन
मीठा पानी	घरेलू, औद्योगिक और कृषि उपयोग के लिए पानी का भंडारण और अवधारण
रेशा और ईंधन	पेड़ के तना (सवहे) का उत्पदन, ईंधन की लकड़ी, चारा जीवों से दवाओं और अन्य सामग्री का निष्कर्षण
जैव रासायनिक	जीवों से दवाओं और अन्य सामग्री का निष्कर्षण
आनुवांशिक सामग्री	संयंत्र रोगजनक के प्रतिरोध के लिए जीन, सजावटी प्रजातियों के लिए जीन
विनियमन	
जलवायु विनियमन	ग्रीन हाउस गैसों का स्त्रोत और सिंकय स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर तापमान, वर्षा और अन्य मौसमी प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है
जल विनियमन (हाइड्रोलॉजिकल प्रवाह)	भूजल पुनर्भरण
जल शोधन और अपशिष्ट उपचार	प्रतिधारण, आरोग्य प्राप्ति और अतिरिक्त पोषक तत्वों और अन्य प्रदूषकों के हटाना
कटाव विनियमन	मिट्टी और अवसादों का प्रतिधारण
प्राकृतिक जोखिम विनियमन	बाढ़ नियंत्रण, तूफान संरक्षण
परागन	परागण के लिए निवास स्थान
सांस्कृतिक आध्यात्मिक और प्रेरणादायक	प्रेरणा का सत्रोत; कइ धम्रं आद्रीूमि पारिसिाितिकी प्रणालियों के पहेलुओं को आध्यातिमक ओर धाम्रिक महतव देते हें
मनोरंजन	मनोरंजन गतिविधियों के लिए अवसर
सौंदर्यबोध	कई लोगों को आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी प्रणालियों में सुंदरता या सौंदर्य ढूंढता है।
शिक्षात्मक	औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए अवसर
सहयक	
मृदा गठन	मिट्टी प्रतिधारण और कार्बनिक पदार्थ का संचयन
पोषक तत्वों का आवर्तन	पोषक तत्वों का भंडारण, रीसाइक्लिंग, प्रसंस्करण और अधिग्रहण
विविधता	निवासी या क्षणिक प्रजातियों के लिए निवास

1.5 जैव विविधता

झीलों में प्रजाति विविधता का समर्थन प्राकृतिक निवास स्थान के रूप में अहम् है। कुछ रीढ़ और अकशेरूकी जीव पूरे जीवन चक्र के लिए झीलों पर निर्भर हैं। जबकि, दूसरों को अपने जीवन का विशेष चरणों के दौरान ही इन क्षेत्रों के साथ संबंध रहता है । झीलें फूड चेन के समर्थन में एक मुख्य भूमिका निभाती है। जैव विविधता का समर्थन– उन प्रजातियों सहित जो अधिक समय शुष्क झीलों से दूर रहते हैं, लेकिन अपने अस्तित्व के लिए ऐसे प्रवासी पक्षियों के लिए झीलें महत्वपूर्ण हैं। झीलें वन्य जीवन के लिए महत्वपूर्ण प्रजनन क्षेत्र हैं और प्रवासी पक्षियों को शरण प्रदान करती हैं। कुछ अनुमानों के मुताबिक, भारत की ओर से दर्ज की गई प्रवासी पक्षियों की प्रजातियों की अनुमानित संख्या भारत के कुल पक्षी प्रजातियों में से लगभग 24% है, जो 1200 और 1300 के बीच है। झीलें व्यावसायिक रूप से मुख्य मछली प्रजातियों का प्रजनन भूमि अर्थात डिम्भ, पौना एवं किशोर मछलियों को नर्सरी क्षेत्र प्रदान करती हैं। बाढ़कृत झीलें नदियों के प्राकृतिक रूप से मत्स्य बीज संचयन एवं विकास में अहम् भूमिका निभाते हैं। जैव विविधता के संरक्षण के लिए पहला कदम– वर्तमान प्राकृतिक संसाधनों की विविधता का आकलन और उन लोगों की पहचान करने जो महत्वपूर्ण और सबसे असुरक्षित है । पानी की कमी और मीठा पानी अभिगम्यता और जनसंख्या वृद्धि की समस्या विश्व स्तर पर महत्वपूर्ण है जो खाद्य उत्पादन में वृद्धि निरोधक अर्थात मानव स्वास्थ्य और आर्थिक विकास को नुकसान पहुँचा रही है। भोजन और पानी अर्थात खाद्य और जैव विविधता के बीच उलटा संबंध मौजूद है।

2. झीलों की संख्या एवं क्षेत्रफल में गिरावट के कारण

भारत में झीलों की हानि दो व्यापक समूहों, अर्थात् तीव्र और जीर्ण नुकसान में विभाजित किया जा सकता है। मिट्टी से गीला क्षेत्रों को भरना– तीव्र नुकसान कहा जाता है, जबकि वन कटाव के साथ, कई दशकों से झीलों के अवसादन के क्रमिक उन्मूलन के रूप को जीर्ण नुकसान कहा जाता है। झीलों में निरंतर क्षति एवं कमी के लिए प्राथमिक कारण निवास संशोधन, जलवायु परिवर्तन, विदेशी प्रजातियों का आक्रमण, अत्यधिक दोहन और प्रदूषण है।

2.1 मत्स्य आवास में परिवर्तन

झीलों का नुकसान और मत्स्य प्रजातियों की गिरावट के लिए मानवीय गतिविधियाँ जिम्मेदार हैं। इसके अधीन बांधों का निर्माण, कृषि विस्तार, नदी तटीकरण, बड़े पैमाने पर सिंचाई और नदी परिवर्तन, वनों की कटाई, मानव अतिक्रमण तथा सड़कों और बाढ़ नियंत्रित ढांचे आते हैं। बांधों नदियों की संयोजकता बाधित करता है जो मछली प्रजनन और प्रवास को बाधित करता है। बांध से जुड़ी बड़े जलाशयों मौसमी बाढ़ को बाधित कर बाढ़कृत मैदानी झीलों की उत्पादकता को बनाए रखने के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को रोके रखता है। कृषि विस्तार अक्सर अंतस्थर्लीय जल प्रणालियों को परिवर्तित कर किया जाता है।यह जलीय जैव विविधता और प्राकृतिक बाढ़ नियंत्रण कार्य को काफी कम करता है।अक्सर यह पाया गया है जहाँ

झीलों में अरक्षणीय जलीय कृषि एवं वनों की तेज कटाई से प्रेरित है वहीँ जंगली जीवों के लिए निवास स्थान कम हो रहा है।

2.2 जलवायु परिवर्तन

वैश्विक जलवायु परिवर्तन से कई झीलों को लगातार नुकसान होने की उम्मीद है । उनकी प्रजातियों में गिरावट के साथ ऐसी सेवाओं जिसपर मानव आबादी झीलों पर निर्भर है, उसमें नुकसान पहुंचने की आशंकाएं प्रबल हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा में वृद्धि हो सकती है, जिससे पृथ्वी के आधे से अधिक सतह पर अधिक वर्षा होने का अनुमान है। हालांकि, सभी जगह समान बारिश नहीं होगी। जलवायु परिवर्तन अन्य इलाकों में वर्षा में पर्याप्त कमी का कारण होगा। बढ़ी हुई वर्षा के लाभ के बावजूद, IPC द्वारा अनुमानित जलवायु परिवर्तन कई झीलों के पारिस्थितिक तंत्र पर हानिकारक प्रभावों की संभावना है।

2.3 विदेशी प्रजातियों का आक्रमण

विदेशी मछलियों के आक्रमण से पारिस्थितिक परिणामों से निवास स्थान का नुकसान और परिवर्तन, जल प्रवाह एवं खाद्य में बदलाव एवं आप्राकृतिक निवास का निर्माण है । विदेशी जलकुंभी (*Eichhornia crassipes*) के आक्रमण से झीलों प्रदूषित और खतरे में है अर्थात देशी वनस्पति के साथ प्रतिस्पर्धा में है। तिलापिया,कॉमन कार्प, थाई मांगुर इत्यादि आक्रामक विदेशी मछली प्रजातियाँ धीरे धीरे झीलों के मूल निवासी विविधता को भविष्य में नष्ट कर देगा ।

2.4 प्रदूषण

झीलों में प्रदूषण, बढ़ती चिंता का विषय है। प्रदूषण झीलों के पानी और जैविक विविधता को प्रभावित करता है ।वाहनों से प्रदूषकों के उत्सर्जन में वृद्धि, उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग , और बढ़ती पशु चराई से झीलों प्रदूषित हो रही हैं। प्रदूषकों हमारे पारिस्थितिक तंत्र में पोषक तत्वों की प्राकृतिक संतुलन को बदल रहा है और उन प्रणालियों के कार्यों और सामुदायिक संरचना पर दीर्घकालिक परिणाम होना तय है ।जब सीमित पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, मिट्टी से पानी में प्रवेश कर प्राथमिक उत्पादकों जैसे पादप प्लवक के विकास बढ़ जाती है। बसंत और गर्मियों के महीनों में, जब वहाँ सूरज की रोशनी उच्चतम मात्रा में होती हैं, शैवाल और अन्य पादप प्लवक अत्याधिक विकास कर पानी की उपरी सतह पर रहती है जहां पोषक तत्व पाया जाता है। आखिरकार, पादप प्लवक तल पर गिर जाता है, जहां मृत कार्बनिक पदार्थ के रूप में एक परत जमा हो जाता है। इस कार्बनिक पदार्थ की भारी मात्रा के कारण, अपघटित जीवाणु जनसंख्या की बड़ी मात्रा में तत्क्षण वृद्धि होता है। जैसे जीवाणु मृत शैवाल और पादप प्लवक को विघटित करता है, वे ऑक्सीजन की भारी मात्रा में उपयोग करते हैं। अक्सर एक बिंदु है जहां पानी में ऑक्सीजन की कमी के परिणामस्वरूप गंभीर तनाव या घातक प्रभाव पाया जाता है। इस न्यूनतम ऑक्सीजन ¼< 2 मि.ग्रा/लि.) के स्तर पर जीव का जिन्दा रहना मुश्किल हो जाता हैं। इस तरह अल्प–ऑक्सीयता घटता है ।

3. मत्स्य प्रबन्धन

झीलों पर आश्रित समुदायों को अमूल्य वस्तुओं और सेवाओं प्रदान करता है। झीलों से औसत मछली उपज क्षमता 1050 और 1250 किलोग्राम/हेक्टेयर के बीच अनुमान लगाया गया है। वर्तमान स्तर इन झीलों से मत्स्य उत्पादन बहुत कम (14 से 488 किलोग्राम/हेक्टेयर) अर्थात औसतन 173 किलोग्राम/हेक्टेयर है। बाढ़कृत झीलों मछली उत्पादन को बढ़ाने के लिए पर्याप्त गुंजाइश प्रदान करते हैं। यह एक झील की प्रकृति और पारिस्थितिक परिस्थितियों, पर निर्भर करता है । उत्पादन की प्रक्रिया में प्रबंधन विकल्प झीलों के अत्यधिक नियंत्रित से बिल्कुल नहीं मानव हस्तक्षेप है। मानव हस्तक्षेप के स्तर के आधार पर, झीलों की मात्स्यिकी–प्रग्रहण मात्स्यिकी, प्रग्रहण आधारित मात्स्यिकी अर्थात संवर्धन आधारित प्रग्रहण मात्स्यिकी में वर्गीकृत किया गया है ।

3.1 प्रग्रहण मात्स्यिकी

प्रग्रहण आधारित मात्स्यिकी आम तौर पर बड़ी खुले झीलों में किया जाता है । इन झीलों में प्रबंधन के विकल्प सीमित है। शावकों और तरुणों की रक्षा एवं संरक्षण, प्रजनन भूमि का पहचान और संरक्षण, शावकों और तरुणों को नदी से झीलों के बीच आवागमन इत्यादि अन्य प्रबंधन विकल्प है। इन झीलों का प्रबंधन और नियंत्रण मुश्किल है अर्थात इन झीलों में मत्स्य उत्पादन बहुत कम है ।

3.2 संवर्धन मात्स्यिकी

संवर्धन मात्स्यिकी छोटे झीलों में संभव है जो प्राकृतिक रूप से नदी से बिलकुल कट गई हैं । उनके पारिस्थितिकी तंत्र और जलीय पर्यावरण अत्यधिक नियंत्रित किया जाता है । झीलों की उत्पादक क्षमता को ध्यान में रख उत्पादन वृद्धि हेतु उचित मात्रा एवं अनुपात में भारतीय मुख्य कार्प के बीज संचयन किया जाता है ।

3.3 संवर्धन आधारित प्रग्रहण मात्स्यिकी

झीलों में यह सबसे महत्वपूर्ण और व्यापक रूप से प्रचलित प्रबंधन प्रणाली है । इन झीलों में मत्स्यन मुख्यतः बीज संचयन पर निर्भर है । मत्स्य बीज संचयन पौना अवस्था में सीधे छोड़ दिया जाता है । इसका दूसरा विकल्प यह है कि झीलों में बाढ़े या पेन लगाकर उनमें बीज को अंगुलिका आकार कर पुनः उसी झील में संचयित किया जा सकता है । झीलों का 20 से 90% भाग जलीय पादपों से आच्छादित पाया गया है । मछली उत्पादन में वृद्धि करने के लिए जलीय पादपों पर नियंत्रण जरुरी है । अन्य प्रबंधन विकल्प–अवांछित और हिंसक मछलियों पर नियंत्रण, झीलों में उचित मात्रा में चूना और उर्वरक डालना, संचित मछलियों को प्रतिपूरक आहार देना और उन्हें अन्य पक्षी से बचाना, चयनात्मक मछली प्रग्रहण इत्यादि है ।

दुर्भाग्य से हमारे सभी प्राकृतिक संसाधनों की तरह, झीलों को भी हमारी गतिविधियों से नुकसान उठाना पड़ा

है। बाढ़कृत झीलों के विनाश का मुख्य कारण–निवास का नाश, जलीय परिवर्तन, नदी के ऊपर बांध, विदेशी मछलियों का अतिक्रमण, बांधों से पानी की निकासी, अर्थात औद्योगिक और घरेलू स्रोतों से प्रदूषण है। बाढ़ के दौरान, बाढ़ के स्तर को कम करता है अर्थात निलंबित मिट्टी के कणों और पोषक तत्वों को रोके रखता है। इसके अलावा, झीलों महत्वपूर्ण आहार, प्रजनन और वन्य जीवों के लिए पीने के क्षेत्र है। जलपक्षी को शरण प्रदान करती हैं। झीलें प्रजाति विविधता के समर्थन में अहम् हैं। भारतीय झीलें देश की अपार जैव विविधता का प्रतिनिधित्व करती हैं। भारत में लगभग सभी झीलें सरकार के नियंत्रण में (दोनों केंद्रीय और राज्य) हैं। इन झीलों के कल्याण में समाज की भागीदारी लगभग नगण्य है।

भारत में आर्द्रभूमि संरक्षण, प्रबंधन और उपयोग के लिए कोई विशेष कानून नहीं है। झीलें पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अंतर्गत आती हैं। इस अधिनियम के द्वारा दी गई शक्तियों का प्रयोग कर, केन्द्र सरकार झीलों (संरक्षण और प्रबंधन) नियम, 2010 जारी किया है। मसौदा 2016 के नियम के तहत राज्यों को झील प्रबंधन विकेंद्रित करने के लिए केंद्र सरकार की एक पहल है।

मत्स्य दर्पण : मात्स्यिकी के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं व्यवसायिक दृष्टिकोण

अरूण कुमार बोस, रिधि बोस एवं मो. कासिम

परिचय

मछली शल्कों वाला एक जलचर है जो कम से कम एक जोडे पंखों से युक्त होती है। मछलियाँ मीठे पानी के स्त्रोतों और समुद्र में बहुतायत मे पाई जाती हैं। मछली एक उच्च कोटि का खाद्य पदार्थ है तथा यह खाने और पोषण का एक प्रमुख स्त्रोत होती हैं। मछली के विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाकर उपयोग में लाये जाते हैं। मछली की उपयोगिता सर्वत्र देखी जा सकती है। मछली में वसा बहुत कम पायी जाती है व इसमें शीघ्र पचने वाली प्रोटीन होती है। मछली जलीय परिस्थितिकी में संकेतक की भूमिका अदा करती है। भारतीय इतिहास में दर्शन और भोजन दोनों दृष्टि से शुभ और श्रेष्ठ मानी जाने वाली मछली जलीय पर्यावरण पर आश्रित है तथा जलीय पर्यावरण को संतुलित रखने में मछली की काफी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह कथन अपने में पर्याप्त बल रखता है जिस पानी में मछली नहीं हो तो निश्चित ही उस पानी की जल जैविक स्थिति सामान्य नहीं है। पर्यावरण को संतुलित रखने में मछली की विशेष उपयोगिता है। मछली एक उद्यमी जलीय जंतु है जो हमारे लिये आजीविका के साथ–साथ पौष्टिक आहार, मनोरंजन प्रदान करती हैं। मछली वास्तुसशास्त्र के दृष्टिकोण से भी शुभ माना जाता है। मछलियां बीमारियों के नियंत्रण के लिए अत्यधिक उपयोगी एवं लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। कुपोषण को दूर करने में मत्स्याहार सर्वोत्तम माना जाता है साथ ही साथ यह सुपाच्य एवं अन्य पशु प्रोटीन की तुलना में सस्ती एवं उपयोगी होता है। मत्स्य एवं मात्स्यिकी सदियों से आर्थिकी का एक सशक्त आधार रही हैं।

भारत मात्स्यिकी विश्व की श्रेष्ठ्तम निधि है तथा हमारी विपुल मात्स्यिकी भंडार हमारी कृषि क्षेत्र का आधार माना जाता है। भारत की मत्स्य विविधता विश्व के अग्रणी देशों में एक है तथा अन्य कृषि कार्यो की अपेक्षा मत्स्य उपादान में कम ऊर्जा एवं कम पानी की खपत के साथ ज्यादा लाभ होता है। इन्हीं कारणों से यह क्षेत्र पारंपरिक जीविकापार्जन के साधन मात्र से ऊपर उठकर उद्योग के कगार पर आ खड़ा हुआ है जिसके फलस्वरूप आज विश्व के मछली उत्पादक देशों में हमारा देश द्वितीय स्थान पर विराजमान है। एशिया में मत्स्य उत्पादन के क्षेत्र में भारत द्वितीय तथा कामनवेल्थ देशों में अपने आप को प्रथम स्थान पर सुशोभित कर रहा है। यहाँ का जन–मानस इस प्राकृतिक जल सम्पदाओं से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। फलस्यरूप भारत की सभ्यता, संस्कृति, व्यवसायिक एवं सामाजिक क्रिया–कलाप पर इनका गहरा तथा अटूट प्रभाव परिलक्षित होता है

ऐतिहासिक दृष्टिकोण

भारत में मत्स्य एवं मात्स्यिकी का अत्यंत पुराना इतिहास रहा है। प्राचीन काल से ही या यू कहें कि वैदिक

काल से ही इस विधा से लोग पूर्ण परिचित थे। स्पष्ट रूप से यह भी कह सकते हैं कि मात्स्यिकी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में अंतर्निहित है। भारतीय मात्स्यिकी के इतिहास पर अगर दृष्टिपात किया जाय तो ज्ञात होता है की मत्स्य प्रग्रहण एवं मत्स्य पालन का प्रचलन इस देश में प्राचीन काल से ही था। कई सभ्यताओं के साहित्य इतिहास एवं उनकी संस्कृति में मछलियों का विशेष स्थान है। मत्स्यावतार भगवान विष्णु का अवतार है जो उनके दस अवतारों में से एक है। भगवान विष्णु अपने प्राथमिक अवतार मत्स्य के रूप में अवतीर्ण हुए। मत्स्य से जुड़े बहुत से सन्दर्भ महाकाव्य, वेद, पुराण एवं अनेकों संस्कृति एवं पली साहित्य (मत्स्य पुराण, कौटिल्य का अर्थसास्त्र, महाभारत तथा रामचरित मानस) में मिलता है। एतिहासिक प्रमाणों के अनुसार भोजन के लिये मछलियां 350 बी. सी. से विभिन्न देशों में पाली जा रही हैं।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही मत्स्य का महत्पूर्ण स्थान रहा है। भोजन में मछली का उपयोग अशोक महान के काल में भी होता था। मछली की खाद के उपयोग के बारे में कौटिल्य अर्थशास्त्र के इकतालीसवें प्रकरण में लिखा है। मछली की भारत में विशाल सांस्कृतिक श्रृंखला है, मछली का महत्व विभिन्न सांस्कृतिक कार्यो, धार्मिक समारोह, रीती–रिवाजों एवं प्रतीक चिन्हों में किया जाता रहा है।

भारतीय कथा साहित्य में भी मछली की महिमा दिखाई देती है। भारतीय कवियों और साहित्यकों ने मछली की सुन्दरता को प्रतीक माना है तथा सुन्दरियों के नेत्र–सौन्दर्य को मीनाक्षी या मछली जैसे नेत्र कहकर सराहा है। विक्रम संवत् 1127 में राजा सोमेश्वर ने ''मत्स्यविनोद'' नामक पुस्तक लिखी थी, जिससे उस काल में इस विषय का महत्व स्पष्ट हो जाता है। समाज में मछली इतनी प्रचलित थी कि दैनिक जीवन में भी उसका प्रयोग प्रमुख हो गया था। यात्रा के समय अथवा कोई शुभ कार्य करते समय मछली का दर्शन शुभ माना जाने लगा था।

सामाजिक दृष्टिकोण

मात्स्यिकी मत्स्य जीवी समुदाय के लिये जीवन निर्वाह का मूल आधार है। भारतीय समाज में मछुआ, केवट, धीमर आदि संज्ञा एक ऐसे वर्ग–विशेष को दी गई थी, जो मत्स्य–उद्योग में लगा हुआ था। भारत का मत्स्य–उद्योग विशेष रूप से इसी वर्ग के लोगों के अनुभवों से प्राप्त ज्ञान पर चला आ रहा है। आज विशेष अध्ययन तथ अन्वेषण द्वारा इसे विकसित करने का प्रयास हो रहा है और सम–सामयिक बनाया जा रहा है। अब यह क्षेत्र मछुआ समाज एवं अशिक्षित लोगों के अलावा अन्य समाज के लोगों के साथ शिक्षित एवं उद्यमी वर्ग के लोगों को आकर्षित कर रहा है। देश की सामाजिक–आर्थिक क्रांति में मात्स्यिकी का विशेष योगदान रहा है।

व्यवसायिक दृष्टिकोण

भारत में प्राचीन काल से मत्स्य–उद्योग का प्रचलन रहा है। सम्राट अशोक के शिलालेखों में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि उस काल में मछली पालने और मारने आदि के लिए भी नियम बना दिये गए थे। दिल्ली शिवालिक के पांचवे शिलालेख में मछली मारने के संबंध में निर्देश है इस शिलालेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि मत्स्य उद्योग अर्थात् मछली पकड़ने और बेचने को मान्यता प्राप्त थी। कौटिल्य–अर्थशास्त्र की रचना की और उसमें मत्स्य–उद्योग के लिए स्पष्ट नियम बनाये थे। जनपद–निवेष के 19 वें प्रकरण में कहा गया है–''राजा जलाशयों और झीलों में मछली पकड़ने, नौका चलाने और शाक–व्यापार पर अपना स्वामित्व रखेगा।'' कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में मत्स्य–उद्योग और राज्य द्वारा संचालित मछली–व्यापार हेतु जनहितार्थ नियम भी बना दिये थे। जीवों को वंश नाश से बचाने के लिए उनके 1/6 भाग की रक्षा राज्य द्वारा की जाती थी। मछली पकड़ने की अनुज्ञा (लायसेन्स) के बारे में आदेश था कि पकड़ी हुई मछली का छठा हिस्सा शुल्क के रूप में जमा किया जायेगा। मछली की रक्षा, प्रजनन की व्यवस्था, शुल्क आदि प्राप्त करने, मछली के प्रबंध और प्रशासनिक व्यवस्था के अतिरिक्त मछली का महत्व पूरा–पूरा आंका जाता था। मत्स्य उद्योग और भोजन के रूप लिए मछली के उपयोग के बारे में हमारे इतिहास में वैदिक काल से निरंन्तर साहित्य मिलता है, जो इस उद्योग का महत्व स्पष्ट **करता** है।

मत्स्य पालन दुनिया भर में आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन है और यह भी एक अरब से ज्यादा लोगों के लिए आहार का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। दुनिया भर में 38 मिलियन के आसपास के लोग को मत्स्य पालन में रोजगार रहे हैं एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2014 में विश्व की 56.6 मिलियन जनसंख्या जलकृषि एवं मात्स्यिकी पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर है। वर्ष 2014 मे ं जल कृषि द्वारा कुल 73.8 मिलियन टन जलीय जीव का उत्पादन हुआ है। जिसका मूल्य लगभग 160.2 बिलियन डालर था। वर्ष 2014 मे ं हमारे राष्ट्र के कुल जलीय निर्यात में मात्स्यिकी का योगदान 18ः था एवं इसके निर्यात से कुल 33,441 करोड़ का आय हुआ था। हमारे देश के 14.5 मिलियन जनसंख्या जलीय जीवों से संबन्धित व्यवसाय से जुड़े हुए है। मात्स्यिकी का हमारे देश की जीडीपी में लगभग 1ः एव कृषि के जीडीपी में 5.23ः का योगदान है।

उपसंहार

प्राचीन युग से, मत्स्य पालन मानव जाति और इस गतिविधि में लगे लोगों के लिए रोजगार, आर्थिक लाभ और भोजन का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत रहा है। मत्स्य विश्व स्तर पर एक अरब लोगों को खाद्य और पशु प्रोटीन प्रदान का एक मुख्य स्रोत हैं इसी तरह, मत्स्य पालन राष्ट्रीय आय, रोजगार, पोषण और विदेशी मुद्रा योगदान के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मछली भारतीय परिवारों में एक मुख्य भोजन है। भोजन, रोजगार और वित्तीय लाभ के अलावा, महत्वपूर्ण सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व हैं। हाल के समय में, दुनिया में मत्स्य पालन खाद्य उद्योग एक विकासशील क्षेत्र बन गए हैं, पालन आजीविका सुधार और टिकाऊ विकास को प्राप्त करने में प्रासंगिक माना जाता है मत्स्य पालन गरीबों के लिए एक 'सुरक्षा तंत्र' के रूप में कार्य कर सकते हैं। मत्स्य से संबंधित आजीविका, जटिल गतिशील और अनुकूली हैं. हाल के समय में, विभिन्न सामाजिक या जातिय समूहों अक्सर मत्स्य संसाधनों का दोहन करने के लिए विभिन्न आजीविका रणनीतियों को अपना रहे हैं।

देश की बढ़ती आबादी, बेरोजगारी तथा पौष्टिक आहार की कमी के परिप्रेक्ष्य में मत्स्यपालन का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में मत्स्यपालन बेरोजगारी दूर करने का शासक्त माध्यम हैं जिसे कम समय एवं कम लागत में अधिक आय देने वाले सहायक व्यवसाय के रूप में अपनाया जा रहा है। मत्स्य पालन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जरूरत पड़ने पर हर साइज मछली का मूल्य मिल जाता है। जलीय जीवों की उपयोगिता को देखते हुए पूरे विश्व में इसक` पालन, प्रग्रहण एवं संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। परिणामस्वरूप इससे जुडे उत्पादन, व्यवसाय एवं आय में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। हमारे देश में जलीय जीव की महत्ता को देखते हुए द्धितीय नील क्रांति पर जोर दिया गया है।

पानी की गुणवत्ता के महत्वपूर्ण कारक

कल्पना श्रीवास्तव, संदीप कुमार मिश्रा, अमित रंजन पाण्डेय, सुशील कुमार वर्मा एवं हरिओम वर्मा

पानी की गुणवत्ता जानने के लिए उसके बहुत से कारकों का विश्लेषण करना पड़ता है। इस विश्लेषण के परिणामों के आधार पर ही हम यह कह सकते हैं कि पानी पीने के लिए, या जलीय जीव जन्तुओं के लिए उपयुक्त है या नहीं। अथवा नदी, झील या तालाब के पानी की गुणवत्ता का उसमें रहने वाले जीव जन्तुओं पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। अतः पानी की गुणवत्ता के कुछ मत्वपूर्ण कारकों के बारे में नीचे विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

तापमान

तापमान वह कारक है, जो जलीय जीव जन्तुओं की गतिविधियां प्रभावित करता है। मछली और अधिकांश जलीय जीव जंतु ठन्डे रक्त वाले प्राणी होते हैं। अतः उनके उपापचय क्रियायें पानी के तापमान के साथ बढ़ती हैं और घटती हैं। प्रत्येक जलीय जीव का एक अपना अनुकूल तापमान होता है। अगर पानी का तापमान उनकी अनुकूलन क्षमता से अत्यधिक कम या अधिक हो जाता है तो वह जीव को नुकसान पहुँचाने लगता है। ठन्डे पानी के जीव 0 डिग्री सेल्सियस (32 डिग्री फारेनहाइट) तापमान के नीचे जीवित नहीं रह पाते केवल ऐसी मछलियां जैसे कार्प 36 डिग्री सेल्सियस के ऊपर के तापमान को सहन कर पाती है।

मछली अपने शरीर के अनुकूलन को बनाये रखने के लिए ऐसे स्थान पर चली जाती है, जहाँ का तापमान उसकी आवश्यकता के अनुसार हो। मछलियां ठन्डे मौसम में गरम पानी की तरफ स्थान्तरित हो जाती हैं और गर्मियों में ठण्डे पानी की तरफ, तो स्थानान्तरण पानी के तापमान से जुड़ा हुआ है। वसंत के शुरुआत में ही जब पानी का तापमान बढ़ना शुरू होता है, तभी मछली स्पोनिंग के लिये नया स्थान ढूढ़ने के लिए चल देती है। जलीय जीव जन्तुओं में सभी तरह के क्रियात्मक परिवर्तन तभी पाए गए है, जब तापमान में परिवर्तन होता है। केवल मछली को ही विशेष तापमान की आवश्यकता नहीं है, अन्य पादप जैसे डाएटम्स 15–25 डिग्री सेल्सियस के बीच, हरित शैवाल 25 –35 डिग्री सेल्सियस के बीच नीले हरित शैवाल 30–40 डिग्री सेल्सियस के बीच सर्वाधिक विकसित होते हुए पाए गए। गर्म पानी कुछ तत्वों को जैसे सायनाईट्स, फिनोल, जायलिन और जिंक को जलीय जीव जन्तुओं के लिए अत्यधिक हानिकारक बना देता है। यदि अधिक तापमान के साथ पानी में घुलित आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है तो पानी का विषैलापन और अधिक बढ़ जाता है।

पी.एच.

पानी में उपस्थिति $H+$ और OH^- यह तय करते हैं, पानी अम्लीय है या क्षारीय पीएच स्केल 0 (अत्यधिक अम्लीय) से 14 (अत्यधिक क्षारीय) तक पाया जाता है। साफ पानी में धनात्मक आयन और ऋणात्मक आयन की सांद्रता बराबर होती है। अतः इसका पीएच ठीक 7 होता है। किसी भी जलीय पारिस्थितिकी तंत्र का

पीएच उसकी उम्र तथा अन्य समुदाय तथा औद्योगिक द्वारा विसर्जित रसायनों से प्रभावित होता है। ज्यादातर मछलियां 5 से 9 तक के पीएच को सहन कर सकती हैं। जब अम्लीय पानी इन्हीं रसायनों और धातु के संपर्क में आता है तो उन्हें और अधिक विषैला बना देता है।

क्लोरीन

पानी में घुलित क्लोरिन गैस मछली तथा अन्य जीव जन्तुओं के लिए अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में भी विषकारक होती है। यदि पीएच का स्तर पानी में कम है तो क्लोरिन और अधिक विषैली हो जाती है। यदि सायनाइड, फिनोल, अमोनिया के साथ जुड़ने पर यह और अधिक विषैली हो जाती है। क्लोरिन गैस कम सांद्रता पर आँखों, नाक, फेफड़ो को प्रभावित करती है और मृत्यु तक भी हो सकती है। यदि पानी में बहुत अधिक सड़न है तो फ्री क्लोरिन एक कंपाउंड (THMS & Trihalomithene) बनाती है। कुछ THMS में अधिक सांद्रता होने पर कैंसर का ख्वातरा रहता हैं। THMS पानी में लम्बे समय तक रहते है और जलीय जीव जन्तुओं का स्वास्थ्य प्रभावित करते हैं।

घुलनशील आक्सीजन

पानी में घुलित आक्सीजन आसपास की वायु डिफ्यूजन द्वारा आती है, पानी के वायुकरण से आती है, और प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा आती है। मछली तथा जलीय जीव जंतु पानी को तोड़कर ऑक्सीजन नहीं ले सकते, केवल हरे पौधे और कुछ जीवाणु ही प्रकाश संश्लेषण या समान प्रक्रिया द्वारा ऐसा कर सकते हैं। पृथ्वी पर मौजूद कुल ऑक्सीजन का 3/4 हिस्सा समुद्र में मौजूद पादप प्लवक द्वारा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया से प्राप्त होता है। अगर पानी ज्यादा गरम है तो ऑक्सीजन पर्याप्त नहीं होगी और यदि पानी में बहुत अधिक जीवाणु या जलीय जीव जंतु हैं तो ऑक्सीजन का उपयोग अत्यधिक होगा और उसका स्तर गिर जायेगा।

खेती में अत्यधिक खाद देने से, नदी/तालाब के पानी में फास्फेट तथा नाइट्रेट की मात्रा बढ़ जाती है, इससे पौधे/शैवाल बढ़ते हैं तथा ऑक्सीजन की कमी बादल वाले दिनों में हो जाती है। किसी जलीय जीव–जंतु को कितनी घुलित ऑक्सीजन की आवश्यकता है, यह उसकी प्रजाति, भौतिक अवस्था पानी का तापमान प्रदूषण की मौजूदगी आदि पर निर्भर करती है। मछली एक ठन्डे रक्त वाली प्राणी है। अतः वह बढ़े तापमान पर अधिक ऑक्सीजन की भी आवश्यकता होती है। अपनी उपापचय क्रिया को बढ़ाने के लिए औसतन 9.0 पीपीएम घुलित ऑक्सीजन आवश्यक होता है। घुलित ऑक्सीजन 3.0 पीपीएम से नीचे होने पर मछली मरने लगती है। पानी में घुलित ऑक्सीजन और कार्बनडाईऑक्साइड कम हो तो अमोनिया मछली तथा जलीय जीव जन्तुओ के लिए विषाक्त हो जाती है।

नाइट्रेट और नाइट्राइट

नाइट्रेट खाद का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। बरसात के दौरान यह खेतो से नदी में पहुचँता है। नाइट्रेट

शैवाल तथा हरे पौधों की वृद्धि को बढ़ाता है जोकि मत्स्य जनसंख्या के बढ़ने में सहायक होता है। यद्यपि अगर शैवाल खरपतवार अधिक बढ़ते हैं तो ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और मछलियों की मृत्यु हो सकती है।

नाइट्राईट एक खतरनाक बीमारी 'ब्राउन ब्लड' संक्रमण को जन्म देती है। नाइट्राइट ही तुरंत जीवाणु द्वारा नाइट्रेट में बदल दी जाती है।

क्षारीयता

ये पानी में उपस्थित वो तत्व है जिनमें अम्लीयता को ख़त्म करने की क्षमता होती है। यह मछलियां तथा जलीय जीवन के लिए महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह पीएच को स्थिर रखता है। प्राकृतिक क्षारीयता के स्रोत हैं, चट्टान, इनमें वाई कार्बोनेट और हाईड्राक्साइड होते हैं। बोरेट, सिलिकेट, फास्फेट भी क्षारीयता को बढ़ाने में मदद करते हैं। चूने के पत्थर कार्बोनेटस में समृद्ध होते है। अतः इन चट्टानों के बीच से बहता हुआ पानी अधिक क्षारीयता रखता है। अतः अधिक बफर क्षमता भी इसके विपरीत ग्रेनाइट में खनिज तत्व नहीं होते है। अतः ग्रेनाइट समृद्ध स्थान की क्षारीयता कम होती है।

अमोनिया

अमोनिया मछली तथा जलीय जीव जन्तुओं के लिए अत्यधिक सूक्ष्म मात्रा में भी हानिकारक होता है। अमोनिया स्तर 0.1 मि.ग्रा./ली. से अधिक होना प्रदूषण दर्शाता है। नाइट्रेट की तरह यह भी पानी में युट्राफिक स्थिति को दर्शाता है। यदि पानी का पीएच और तापमान भी अधिक है तो अमोनिया और भी अधिक विषाक्त हो जाती है।

कार्बन डाइ ऑक्साइड

कार्बन डाइ ऑक्साइड जंतु पौधे तथा जीवाणु के श्वसन क्रिया द्वारा उत्पन होती है। सभी जंतु और कार्बन डाइ ऑक्साइड छोड़ते हैं। हरे पौधे कार्बन डाइ ऑक्साइड को सोखते हैं। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा और ऑक्सीजन उत्पन करते हैं। हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण सिर्फ सूर्य की रोशनी में ही करते है और रात में सिर्फ सांसे लेते हैं। अतः रात में ज्यादा ऑक्सीजन इस्तेमाल होती है और दिन की तुलना ज्यादा कार्बन डाइ ऑक्साइड पानी में पहुचती है। जब कार्बन डाइ ऑक्साइड का स्तर ऊँचा हो जाए और ऑक्सीजन का नीचा हो जाए तो मछली को सांसे लेने में परेशानी होती है और ये समस्या और अधिक बढ़ जाती है। यदि पानी का तापमान और अधिक बढ़ जाए तो मछली बिना किसी दुष्प्रभाव के। 20 मिग्रा/ली0 कार्बन डाइ ऑक्साइड को सहन कर सकती है ।

जल का गंदलापन

जलीय माध्यम में प्रकाश को सतह के अन्दर तक पहुँचने में उसमें घुलित ठोस तत्वों/पदार्थों की मात्रा पर

निर्भर करता है। गंदलापन का का मुख्य कारण, नदी तथा झीलों में प्लवक तथा मृदाक्षरण और गाद का जमाव, सूक्ष्मजीव, पौधे, धूल, लकड़ियां, रसायन एवं कोयला रूपी धूल है। जल का गंदलापन मछली तथा अन्य जलीय जीव–जन्तुओं का जीवन, (सूरज की रोशनी तथा प्रकाश संश्लेषण क्रिया को प्रभावी करके) प्रभावित करती है। यदि घुलित ठोस पदार्थ रोशनी को बाधित करेंगे तो प्रकाश संश्लेषण की क्रिया तत्पश्चात ऑक्सीजन का निष्कासन कम हो जायेगा। यदि प्रकाश बहुत कम होगा तो यह क्रिया पूरी तरह रुक जायेगी और शैवालों की मृत्यु हो जाएगी। अत्यधिक घुलित प्रसुप्त पदार्थ से मछली के गिल (क्लोम) में अवरोध उत्पन्न हो सकता है और इससे उसकी मृत्यु हो सकती है। घुलनशील ठोस तत्व हानिकारक सूक्ष्मजीवों के लिए सतह या आवास प्रदान करते हैं और उन्हें पनपने में मदद करते हैं।

जूट की छाल सड़ाने की अत्याधुनिक तकनीकें और उनके लाभ

देब प्रसाद रॉय एवं के. एल. अहिरवार

स्वर्ण तंतु के रूप में पहचानी और जाने वाली जूट अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रमुख व्यापारिक फसल है जिसकी उत्पत्ति मुख्यतः बंग्लादेश और भारत दो विकासशील देशों से मानी जाती है। इसके तंतुओं से मोटे एवं मजबूत धागे काते जा सकते हैं जिनके वजह से जूट आज सहज और व्यापक रूप में लोकप्रिय हो चुका है। इसकी उत्पत्ति मालवीसी परिवार के जीनस कार्कोरस प्रजाति के पौधों से हुई है। केवल जूट की ही एक ऐसी फसल है जो सबसे सस्ते प्राकृतिक रेशों में से एक होने के कारण उपयोग की जा रहीं; रेशा क़िस्मों तथा कपास की फसल के बाद दूसरे स्थान पर है और इससे सर्वाधिक परिमाण में रेशा प्राप्त होता है। जूट रेशा मुख्य रूप से पादप सामग्री यानि पादप रेशों के प्रमुख घटक– सेलूलोज़ और काष्ठीय रेशों के प्रमुख घटक– लिग्निन से निर्मित होता है। यह एक प्रकार का लिग्नो–सेल्युलोसिक रेशा है जो अंशतः वस्त्र तंतु और अंशतः काष्ठीय रूप में होता। यह पिंडी वाले रेशों की श्रेणी में आता है। प्राकृतिक पौधों यानि कैनाफ, औद्योगिक अमारी, सनई, रैमी इत्यादि की छाल या पिंडी से रेशा को निकाला जाता है। औद्योगिक अर्थ में जूट रेशा को कच्चा जूट कहते है। इसके तंतु भूरे से सफेद रंग के और लंबाई में 1–4 मीटर अथवा 3–12 फुट के होते हैं। इस रेशा को अक्सर हेसियन तथा जूट कपड़े को हेसियन कपड़ा भी कहते हैं। कुछ यूरोपीय देशों में जूट बोरों को गनी बैग कहा जाता है। उत्तरी अमेरिका में जूट से बने कपड़ा को बर्लेप के रूप में जानते है। जूट की बढ़वार के लिए मौसमी ऋतु काल की मानसूनी उष्ण और आर्द्र जलवायु अनुकूल मानी जाती है। इसकी सफल खेती के लिए 20–40 डिग्री सेल्सियस तापमान और 70–80 प्रतिशत सापेक्षिक आर्द्रता सबसे अधिक उपयुक्त होती हैं। जूट की फसल के लिए साप्ताहिक 5–8 सेंटीमीटर बारिश और बोआई के दौरान अतिरिक्त वर्षा की आवश्यकता पड़ती है। विशिष्ठ विशेषताओं की समपन्नता के वजह से यह बेहतरीन वस्त्र तंतु है। इसे 'सुनहरे रेशा' के रूप में भली–भांति जाना जाता है।

इस रेशा में अल्फा सेल्यूलोस (α.बमससनसवेम), यूरोनिक एसिड डेरिवेटिव और लिग्निन सहित हेमिसेल्यूलोज़ मुख्य घटक के रूप में विद्यमान हैं। सेल्यूलोसिक सामग्री काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे सेल्यूलोस, अल्कोहल, कार्बनिक अम्ल इत्यादि कई उपयोगी उत्पादों का बायो–रूपान्तरण किया जाता है।

जूट की काष्ठीय टहनी के ऊपर पाई जाने वाली हरी छाल रेशा कोशिकाओं के रूप में पेक्टिन नामक चिपचिपे पदार्थों के साथ सख्ती से चिपकी होती है। विभिन्न जल स्रोतों (साहा और बनर्जी, 1955) में टहनियों को डुबाने पर बैक्टीरियों और नमी की संयुक्त क्रिया द्वारा विघटित चिपचिपे पदार्थों के परिणामस्वरूप छाल

का पृथकीकरण सड़ाने की क्रिया कहलाती है (देव, 1954; मियां, 1996, गुप्त एवं 1976; मजूमदार और डे; 1977)।

सड़ाने की परंपरागत विधियों में जूट के कटे हुए पौधों को खुले आसमान में पड़ने वाली ओस से भिंगोकर या पानी में डुबा कर सड़ाया जाता है। पानी में डुबाकर सड़ाने से रेशा न सिर्फ समान रूप से सड़ता है अपितु उच्च गुणवत्ता वाला भी प्राप्त होता है लेकिन इसके लिए श्रम और पूंजी दोनों ही की आवश्यकता होती हैं। इस प्रयोजनार्थ बड़े परिमाण में स्वच्छ पानी होना आवश्यक है; अपर्याप्त पानी में रेशा की गुणवत्ता घटिया हो जाती है। गुणवत्ता वाला रेशा प्राप्त करने के लिए समुचित तरीके से सड़ाने के लिए पानी की जरूरी मात्रा निर्धारित करना अति आवश्यक है। पानी की कमी से बचने के लिए सड़ाने से पहले जूट के हरे पौधों के ऊपर की छाल निकाल कर सड़ाते हैं। इसे 'छाल सड़ाना' कहते है। राष्ट्रीय पटसन एवं समवर्गी रेशा प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, कोलकाता द्वारा आविष्कार किए गए रासायनिक त्वरक का उपयोग करके सड़ाने की प्रक्रिया में तेजी लाई गई है। इससे न केवल पानी की मात्रा घटती; समय कम होता है; बल्कि ऐसे रासायनिक सूत्रीकरण के उपयोग से रेशा की गुणवत्ता भी सुधरती है।

जूट रेशा का उत्पादन, क्षेत्र और उपज

पिछले एक से डेढ़ दशकों के दौरान देश में जूट और संवर्ग तंतुओं के उत्पादन के साथ ही कृषि क्षेत्र तथा उपज स्तर के ग्राफों को उतार–चढ़ाव की अवस्थिति में दर्शाया गया है। वर्ष 2001–02 से 2010–11 की अवधि के दौरान अधिकतम उत्पादन वर्ष 2009–10 में 118.17 लाख गांठों के साथ 102.72 से 118.17 लाख गांठों की रेंज में 180 किलोग्राम प्रत्येक अवधि में बना रहा। वर्ष 2010–11 में यह उत्पादन घटकर 106.20 लाख गांठ रह गया, जबकि कृषि मंत्रालय के वित्त, आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय (डीईएस), द्वारा लगाए गए चार पूर्वानुमानों के मुकाबले वर्ष 2013–14 में जूट रेशा का उत्पादन मामूली सा खिसककर 1.14 अंक पर आ पहुंचा। 2001–02 के दौरान अधिकतम कृषि क्षेत्र 10.47 लाख हेक्टेयर और वर्ष 2005–06 में घटकर 8.98 लाख हेक्टेयर हो गया। वर्ष 2013–14 में जूट की कृषि का क्षेत्र बढ़कर 9.01 लाख हेक्टेयर तक जा पहुंचा। जूट की कृषि से प्राप्त ऊपज का स्तर दर्शाने वाले ग्राफ में भी उतार–चढ़ाव देखा गया। इस समय सीमा के दौरान वर्ष 2002–03 में प्रति हेक्टेयर 1960 किलोग्राम और वर्ष 2013–14 में प्रति हेक्टेयर 2372 किलोग्राम ऊपज के स्तरों में उतार–चढ़ाव बना रहा। वर्ष 2010–11 में प्रति हेक्टेयर 1722 किलोग्राम रेशा की पैदावार हुई, जो काफी कम रही। यह स्थिति जूट उत्पादन के स्थिर स्तरों को दर्शाती है;वर्ष 2000–01 और 2010–11 की त्रिवार्षिक समाप्ति में उत्पादन वृद्धि दर (–) 0.10 प्रतिशत रही है। जूट के क्षेत्र, उत्पादन और उपज के स्तर की त्रि–आयामी उतार–चढ़ाव वाली गतिविधि के लिए मुख्यत: बेहतर कमाई की उम्मीदों से प्रेरित विचारों के साथ ही बुवाई के समय व्याप्त मौसम की स्थिति, कच्चे जूट के मूल्य का स्तर, बीज की कीमत और जूट की उपलब्धता जैसे कारक जिम्मेदार माने गए हैं जिनसे किसान जूट के खेतों में अन्य फसलों को उगाने के लिए मज़बूर होते हैं। जूट उत्पादों के लिए सस्ती एवं सुविधाजनक विकल्प के रूप में पॉलिथीन और सिंथेटिक रेशा का बढ़ता उपयोग कथित तौर पर जूट उत्पादन की संभावनाओं के लिए निराशाजनक है। इस अवधि के दौरान कृषि क्षेत्र और उत्पादन को देखने से पता चलता है कि पूर्व वर्षों के मुकाबले घटते क्षेत्र के परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत बेहतर ऊपज स्तर के कारण परवर्ती वर्षों के दौरान उत्पादन प्रभावित नहीं हुआ है। लेकिन जूट की खेती के क्षेत्र की पर्याप्त उपलब्धता अभी भी बनी हुई है। इन वर्षों में जूट और संवर्ग रेशा के उत्पादन, कृषि क्षेत्र और उपज का रुझान नीचे दिए गए चार्ट में दर्शाया गया है।

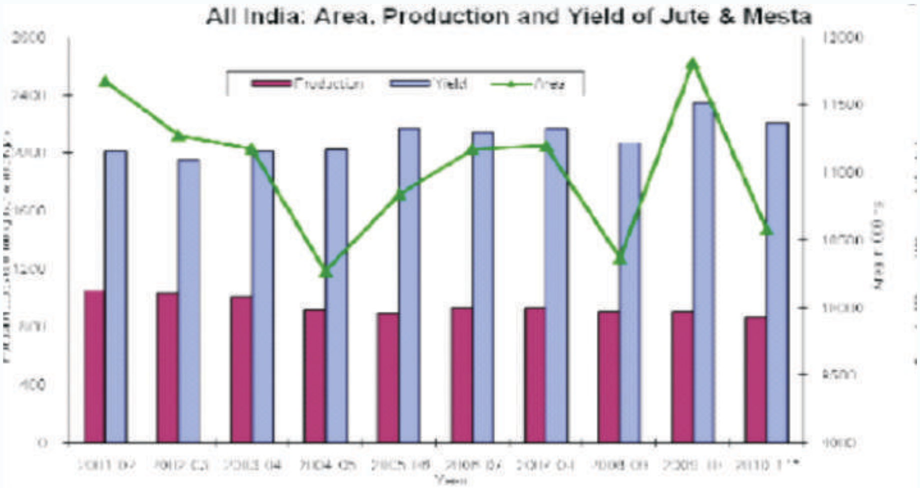

जूट सड़ाना: गुणवत्ता वाले रेशा प्राप्ति का महत्वपूर्ण कारक

जूट रेशा की गुणवत्ता आनुवंशिक रूप से नियंत्रित होती है और यह रेशा कोशिकाओं की कायकीय विशेषताओं एवं उनके अभिविन्यास के आधार पर किस्मों के बीच भिन्न–भिन्न रहती है। रेतीली मिट्टी में मोटा और हल्के काया वाला जबकि लोम मिट्टी में श्रेष्ठ गुणवत्ता वाला रेशा पैदा होता है। जलवायु और पोषण की मात्रा का भी रेशा पर प्रभाव पड़ता है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण कारक 'सड़ाने की प्रक्रिया' है। अगर यह दोषपूर्ण है तो इसकी विविधता मिट्टी, जलवायु आदि के सकारात्मक योगदान को खराब कर देती है। प्रतिधारण की अवस्था के तहत मोटे अति–सड़े, चमक विहीन और कमजोर रेशे प्राप्त होते हैं। सबसे पहले बंडलों को 30 सेंटीमीटर गहरे पानी में खड़े अवस्था में रखते और बाद में पानी से हटाकर एक तरफ रख देते हैं। आमतौर पर बंडलों की 2 से 3 परतें बिछाकर एक साथ बाँध देते हैं। उन्हें पानी में डूबाने के लिए उनके ऊपर जलकुंभी या तनिन एवं लौहांश मुक्त खरपतवार अथवा लकड़ी के लट्ठों अथवा सीमेंट–कंकरीट के ठोस खंडों का भार डाल देते हैं ताकि वे पानी में न उतराएँ और पानी की सतह से कम से कम 10 सेमी नीचे डूब जाएँ। बंडलों के ऊपर कीचड़ डालकर डूबाने से कम मूल्य के काले यानि श्यामला रेशे प्राप्त होते हैं। सड़ाने के लिए मंद बहता स्वच्छ, मीठा और मध्यम गहराई वाला जल आदर्श होता है और लगभग 34 डिग्री से. तापमान अनुकूल माना जाता है। टैंक और छोटे–छोटे तालाबों में भी रेशा सड़ाया जाता हैं। जूट बंडलों को पानी में पूरा न डूबाकर सड़ाने से सबसे कम मूल्य के 'क्रोपी' रेशे प्राप्त होते हैं। अनुपयुक्त तरीके से सड़ाने के वजह से ही रेशा में अधिकांश दोष पनपते हैं। टहनियों को अत्यधिक सड़ाने से 'चमक विहीन' और कमजोर रेशे प्राप्त होते हैं। सड़ाना एक प्रकार की सूक्ष्मजीवविज्ञानी प्रक्रिया है इसलिए हर दिन कुछेक पौधों को दसवें दिन से निरीक्षण करके सड़ाने की आखरी अवस्था निर्धारित करते है। जब अंगूठे और उंगलियों के दबाव में टहनी के ऊपर से रेशा आसानी से बाहर निकल आए तब समझना चाहिए कि सड़ाने की प्रक्रिया पूरी हो चुकी है। सड़ाने की क्रिया में विभिन्न कवक, एरोबिक दूसरे शब्दों में ऑक्सीजनजीवी सूक्ष्मजीव और एनारोबिक बैक्टीरिया क्रियाशील रहते हैं। सर्वप्रथम एरोबिक जीव विकसित होते हैं और ये पानी में विलुप्त ऑक्सीजन का अधिकांश उपभोग करते हैं, अंततः एनारोबिक अपने विकास हेतु अनुकूल वातावरण बनाते हैं। यह देखा

गया है कि पानी में विलुप्त ऑक्सीजन की मात्रा के अधिकांश हिस्सा का उपभोग एनारोबिक प्रजातियों द्वारा किया जाता है। पौधों की छाल को उचित तरीके से सड़ाने के लिए पानी का परिमाण, प्रकृति, तापमान, पीएच और बंडलों को पानी के भीतर डुबाने के लिए उनके ऊपर डाली गई सामग्री आदि विभिन्न कारक जिम्मेदार होते हैं।

जूट सड़ाने की क्रिया के पीछे रसायन विज्ञान

पारंपरिक तरीके से जूट को सड़ाने में एनारोबिक और एरोबिक बैक्टीरियों की ज्यादातर मध्यस्थता रहती है। पेक्टिन और पॉलीसेकेराइड गोंदीय सामग्री को पूरी तरह से हटाकर सेलूलोज़ की प्राकृतिक ताकत बनाए रखने के लिए बेहतर गुणवत्ता वाला रेशा प्राप्त करना आवश्यक है। परंपरागत विधि से जूट सड़ाने के लिए अच्छी गुणवत्ता वाला रेशा पाने के लिए 1:20 अनुपात में पानी की आवश्यकता होती है। सूखा की स्थिति या देर से मानसून शुरु होने के कारण जल का संकट अधिक गहराता है।

सड़ाने का तात्पर्य किसी भी जीवित सामग्री का आंशिक सड़ांध है। सड़ाने की प्रक्रिया को इस तरह से परिभाषित कर सकते है : – ऐसी क्रिया जिसके द्वारा रेशा बंडल के गैर–तांतुक ऊतक टहनियों के काष्ठीय भागों से अलग हो जाते हैं। बेहतर गुणवत्ता वाले जूट रेशा का उत्पादन मुख्य रूप से सड़ाने की क्रिया पर निर्भर है। वैसे तो जूट सड़ाने के नियंत्रक कारक – पानी की गुणवत्ता, परिमाण, प्रकृति, तापमान और पानी में सूक्ष्म जीवों की उपस्थिति इत्यादि होते हैं। इसके अतिरिक्त, सड़ाने की किसी विशेष विधि की कार्यक्षमता विभिन्न पर्यावरणीय कारकों के प्रभाव पर भी निर्भर करती है। निर्जाफ्ट ने रेशा सड़ाने के घटनाक्रमों से जुड़े पहलुओं पर पूरी तरह से अनुसंधान किया है और किसान के स्तर पर रेशा की गुणवत्ता में सुधार हेतु उपायों की सिफारिश की है।

हमारे अध्ययनों से जाना गया है कि जूट पौधों की ऐसी प्रजातियां जिन्हें भले ही 120 दिनों में काट लिया गया हो, उनसे 140 दिनों की आयु वाले पौधों की तुलना में अत्यधिक मजबूत तंतु प्राप्त होते हैं। यह भी पाया गया कि सड़ाने वाले पानी में सूक्ष्मजीवण्विक अभिक्रिया पानी की सतह से 15 सेंटीमीटर की गहराई में अधिकतम, अति तेज और सर्वश्रेष्ठ होती है। यह भी प्रमाणित किया जा चुका है कुछ सूक्ष्मजीवी क्रियाएँ 35 सेमी गहरे पानी में भी होती हैं लेकिन इनका व्यावहारिक रूप से कोई प्रभाव नहीं देखा गया है।

हमारे अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि सड़ाने वाले पानी में बैक्टीरियों की संख्या सातवें दिन तक बढ़ जाती है जब यह अधिकतम होती है तब पुनः संख्या में तेजी से गिरावट देखी जाती है। चूंकि इस अवधि के बाद तंतुओं के पृथकीकरण की वास्तविक प्रक्रिया शुरू होती है, इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ये या तो ऐच्छिक या सख्त एनारोबिक रोगाणु उत्प्रेरक एजेंट हैं जो वास्तविक सड़ाने की क्रिया करते हैं।

सड़ाने की क्रिया के दौरान, अनेक जैव रासायनिक प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं परिणामस्वरूप सड़ाने वाले पानी की रासायनिक संरचना, पीएच, ईएच और बीओडी लगातार परिवर्तित रहता है। यह देखा गया है कि सड़ाने के दौरान तेरहवें दिन तक कुल शर्करा की मात्रा धीरे–धीरे बढ़ती है और इस समयावधि के बाद यह

वृद्धि महत्वपूर्ण मानी जाती है, सेलुलोसिक घटकों का अपघटन अत्यधिक सड़ने की अवस्था दर्शाता है। सड़ने की क्रिया पूरी हो चुकने पर पेक्टिन का मुख्य निम्नीकोटिकृत उत्पाद गेलेक्टौरोनिक एसिड तेरहवें दिन को उच्च बिंदु पर पहुंचता है। प्रमुख पदार्थ पेक्टिन से एकाधिक जूट रेशा परस्पर चिपका होता है। अधिक मात्रा में गैलेक्टोरोनीक एसिड निकलना सड़ने की क्रिया पूर्ण हो चुकने का संकेत है और इस कालावधि से ही अत्यधिक सड़ने की अवस्था प्रारंभ होती है। सेलूलोजी रेशा का अपघटन सड़ाने वाले घोल में घुलनशील शर्करा का अतिरिक्त निकलने का संकेत है।

यह भी पाया गया है कि सड़ाने वाले पानी का बीओडी सड़ाने की प्रगति के साथ तेजी से बढ़ता है और बारह – पन्द्रह दिनों के बीच चरम पर पहुंच जाता है। इस अवधि के दौरान पानी का पीएच अम्लीय बनता है और फिर पूर्णता की अवस्था में धीरे–धीरे निष्प्रभावी मूल्यों पर पहुंचता है। सड़ाने की प्रगति के दौरान पानी की रेडॉक्ड संभाव्यता भी उसी तरह कम हो जाती है और बारह से पंद्रह वें दिनों में स्थिर बनी रहती है। परिणाम स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि सूक्ष्मजीवों की क्रियाओं के कारण पानी में विलुप्त ऑक्सीजन शीघ्र खत्म हो जाती है और जल में जैव रासायनिक ऑक्सीजन की मांग (बीओडी) पानी में विघटित कणीय कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि के कारण बढ़ जाती है। सड़ाने की प्रगति के साथ पीएच में गिरावट अम्लीय घटकों विशेष रूप से गैलेक्टोरोनिक एसिड निर्मुक्त होने के कारण होती है। मानों में आई गिरावट स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि सड़ाने की प्रगति के दौरान पानी में एनारोबिक वातावरण स्थापित किया गया है।

सड़ाने की क्रिया सामान्य रूप से धीमी होती है, इसलिए कई श्रमिकों ने सड़ाने की क्रियाओं को तेज करने और सड़ाने के विभिन्न तरीकों का उपयोग कर रेशा की गुणवत्ता सुधारने का प्रयास किया है। तरीकों में रसायनों के अलावा, बैक्टीरिया शुद्ध कल्चर, कुछ बैक्टीरिया और कवक से प्राप्त पेक्टिनोलाइटिक एंजाइम शामिल हैं। निर्जाफ्ट ने जूट छाल निकालने के बाद जूट को रासायनिक तरीके से तेजी से सड़ाने के लिए किसान हितैषी तकनीक विकसित की है।

जूट की छाल सड़ाने के प्रकार

सड़ाने का सबसे व्यापक रूप से प्रचलित तरीका पानी में डूबाकर सड़ाना है। जूट की टहनियों के बंडलों को जब पानी में डूबाते हैं तब मूल टहनी के मध्य भाग की सबसे पहले आंतरिक कोशिकाएं फूलती फिर उनकी बाहरी परत फटती हैं और उन सुरागों से होकर पानी भीतर तक पहुंचता है। इस प्रकार दोनों नमी और क्षय–करने वाले बैक्टीरियों का अवशोषण बढ़ जाता है। सड़ाने का समय सावधानी से तय किया जाना चाहिए; रेशा पूरी तरह से नहीं सड़ने पर उसे पृथक करना मुश्किल होता है और अत्यधिक सड़ने से रेशा कमजोर पड़ जाता है। पौधों को 120 दिनों की परिपक्वता पर काटकर निष्पत्रण करना चाहिए। हरी टहनियों को सड़ाने के लिए टैंक में भरे पानी में डूबाकर पॉलिथीन की शीट्स से ढप देते हैं। तीन सप्ताह के बाद सड़ाने की क्रिया पूरी हो जाती है। इस क्रिया में सड़ाने में अधिक समय तो लगता ही है साथ ही अधिक परिमाण में पानी की आवश्यकता होती है और यदि सड़ाने की क्रिया ठीक से नहीं हुई तो पौधे के निचले हिस्सों के तंतु कड़े पड़ जाते हैं। रेशा के निचले कठोर भाग को कतरन कहा जाता है (साहा और बनर्जी, 1955)। कतरन का प्रतिशत कम है लेकिन अधिक गुणवत्ता वाला रेशा रहता है। दो बार में सड़ाना उत्कृष्ट

रेशा बनाने की एक सौम्य प्रक्रिया है, सड़ाने की प्रक्रिया पूरी होने से पूर्व ही पानी से टहनियों को हटा लेते है, कई महीनों तक सूखाते है और फिर सड़ाते है।

माइक्रोबियल या शुष्क पद्धति से सड़ाना

भारी संख्या में विविध सूक्ष्म जीवों को उपयोग करके भी छाल सड़ायी जा सकती है; इस तरह से सड़ाने में अक्सर कम से कम पानी की आवश्यकता होती है। इसे सड़ाने की शुष्क विधि कहते है। सड़ाने की क्रिया में विभिन्न प्रकार के कवक– एरोबिक और एनारोबिक बैक्टीरिया शामिल रहते हैं। सूक्ष्म जीव पौधे की बाहरी छाल के नीचे के खानेदार तंतुओं और दिव्तीयक ऊतकों से सम्बद्ध पिंडी वाली छाल पर हमला करते हैं क्योंकि उनका कठोर लकड़ी पर कोई प्रभाव नहीं होता है। रोगाणु, जीवितक युक्त ऊतकों को विघटित करने के लिए विशिष्ट एंजाइमों को छिपाते हैं। पेक्टिसिनेज, पेक्टेज़ और पेक्टिनेज एंजाइम मुख्य रूप से पेक्टिक पदार्थों को हाइड्रोलाइज करने के लिए उपयोग किया जाता है जो जूट पौधे के संवहनी ऊतक को चिपकाकर रखते हैं। एंजाइम पेक्टिसिनेज पेक्टिक पदार्थों को घुलनशील पेक्टिन में परिवर्तित करता है, जो कि पेक्टस द्वारा सक्रिय होता है जिससे पेक्टिक एसिड का उत्पादन होता है (भुईयान एवं शोध दल, 1979)। उच्च पीएच मान के कारण सड़ाने के प्रारंभिक चरण में बैक्टीरिया का विकास तीव्रतर होता है और एंजाइमिक प्रतिक्रिया बढ़ जाती है। प्रतिक्रिया के रूप में पीएच मान में कमी के कारण जीवाणु वृद्धि धीरे धीरे घट जाती है (हक एवं शोध दल, 2001)।

अहमद एवं शोध दल (2008) द्वारा किए गए अनुसंधान के अनुसार जूट की सड़ी हुई टहनियों से एरोबिक और एनारोबिक बैक्टीरिया पृथक किए गए जिनमें तीन पीढ़ियाँ– बैसिलस, माइक्रोकोस्कस, स्यूडोमोनस और तेरह प्रजातियां शामिल हैं। जिनमें माइक्रोकोकास कारकोरस एक नई प्रजाति और माइक्रोकोस्कस लीटियस वार लीक्यूफेसीनस एक नई किस्म बतलाई गई हैं। एरोबस और फैकेटिव ऐनार्बस में बैसिलस सबटिलिस सबसे आम और बी मकरार, बी पॉलीमीक्सिया, माइक्रोकोकास कॉरकोरस और स्यूडोमोनस एरुगिनोसा सबसे ज्यादा सक्रिय एजेंटों में से एक है।

यदि समयानुकूल अवधि से बाद भी सड़ने की क्रिया जारी रहती है तो सूक्ष्म जीव रेशा के सेल्यूलोज की कोटि को खराब करना शुरू कर देते हैं और ऐसी स्थिति में अत्यधिक रेशा सड़ने का संकेत मिलता है।

जूट रेशों की छाल सड़ाना

रेशा निष्कर्षण के विभिन्न कारक हैं जो पौध से शुरू कर रेशा निकालने तक गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं किंतु रेशा सड़ाना और रेशा निकालना, रेशा की गुणवत्ता बर्धक सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारकों में पहचान किए गए हैं। लेकिन पानी में डुबाकर टहनी सड़ाने की परंपरागत विधि से जुड़े अनेकों मसलों में पौधों को सड़ाने के लिए 1:20 के अनुपात में प्रचुर मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है: पानी के अलावा अन्य कारक अनुपयुक्त अपगलन और न्यूनतम ग्रेड के तंतुओं को उत्पन्न करते हैं। सड़ाने के लिए उपयुक्त जल की दुर्लभता को ध्यान में रखते हुए और टहनी सड़ाने की परंपरागत पद्धति से रू–ब–रू होकर जूट निकालने की वैकल्पिक विधियों पर अपने विचारों को केंद्रित करना जरूरी हो गया है। जैसा कि आजकल कल्पना की जाती हैं कि

छाल सड़ाने के सापेक्ष लाभ हैं क्योंकि पारंपरिक प्रणालियों में कटी हुई जूट टहनियों के बंडल बनाकर विशाल राशि को ढोकर सड़ाने के लिए किसी जलाशय तक लाना, फिर छाल निकालना बहुत खर्चीला और मुश्किल कार्य होता है।

इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए, वैकल्पिक पद्धति विकसित की गई है। इसमें यांत्रिक उपकरणों द्वारा हरी टहनियों के ऊपर से छाल उतारते है और टहनी सड़ाने के बजाय पानी की थोड़ी मात्रा में छाल को सड़ाते है। छाल सड़ाने के लिए जूट की कटी हुई हरी टहनियों का केवल 40: ही लाना पड़ता है और सड़ाने में समय भी कम लगता है। टहनी सड़ाने की तुलना में छाल को पानी में सड़ाने पर कार्बनिक पदार्थ एक तिहाई से भी कम निकलते हैं। इस तरह के कारक, टहनी सड़ाने में लगने वाले पानी के लगभग एक–चौथाई पानी में छाल को सड़ाने में सक्षम बनाते हैं और उसी पानी में छाल को एक से अधिक वार सड़ा सकते है।

वेगवर्धक रसायनिकों का उपयोग करके जूट पौधों को सड़ाना

पारंपरिक तरीके से जूट को सड़ाने में 15 से 20 दिन लगते हैं और बड़ी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है जो अधिमानतः मंद बहता पानी होना चाहिए। सामान्यतया, गाँव के तालाबों में जूट को सड़ाने की अनुमति नहीं होती है क्योंकि पानी काला पड़ जाता है साथ ही दुर्गंधयुक्त होने से यह घरेलू कार्यों एवं मत्स्यपालन हेतु अनुपयोगी पाया जाता है, मच्छरों का प्रजनन होता है और पर्यावरणीय समस्या पैदा करता है। अनिश्चित वर्षा के कारण जूट सड़ाने के लिए पानी की कमी भी हो जाती है। सड़ाने की पर्याप्त सुविधा के अभाव में, अनेक लोग बार–बार जूट ज्यादातर खाईयों में भरे स्थिर और अपर्याप्त पानी में डुबाकर ही सड़ाते रहते हैं जिससे रेशा का रंग और गुणवत्ता 4, 5 या 6 ग्रेड तक घट जाती है और किसान अपनी कठिन परिश्रम की कमाई लेने से वंचित रह जाते हैं। इसके अलावा, कई घंटों तक कमर–गहरे गंदे और स्थिर पानी में काम करने से किसान स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से पीड़ित हो सकते हैं। किसानों की युवा पीढ़ी अपने कठोर श्रम की अपारतोषिक कीमत और व्यावसायिक खतरा से जूट की खेती में रुचि खो रही है।

वेगवर्धक रसायनिकों का उपयोग करके छाल सड़ाना

निर्जाफ्ट ने जूट को त्वरित सड़ाने के लिए फसल कटाई उपरांत तकनीक विकसित की है जिसमें निर्जाफ्ट द्वारा डिज़ाइन और गढ़े गए मैनुअल जूट रिबनर या पावर रिबनर द्वारा हरे जूट के पौधों की ऊपर की छाल उतारना शामिल हैं और निर्जाफ्ट द्वारा तैयार किए गए रासायनिक पदार्थों वाले जलीय घोल में छाल को डुबाकर त्वरित सड़ाया जाता है। छाल को गीला करने के लिए घोल में पानी पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध रहता है। इस विधि से रेशा अधिक मात्रा में प्राप्त होता है।

जूट सड़ाने की नई तकनीक से किसान विभिन्न रूप में लाभान्वित होंगे। पारंपरिक खेती में 100–120 दिनों में जूट को काटा जाता है जबकि सड़ाने की नई प्रक्रिया में 90–100 दिनों की आयु के जूट पौधों को काटा जा सकता है और नई रिबनर मशीन से एक बार में 10–12 हरे पौधों के ऊपर की छाल उतारी जा सकती है। छाल के छोटे– छोटे बंडल बनाकर उन्हें जमीन में खोदे गए गड्ढा में पॉलिथीन की शीट बिछे या सीमेंट के बने पक्के टैंक में भरे 0.5–0.7 प्रतिशत गाढ़े जलीय रासायनिक घोल में डुबाकर सड़ाते हैं। 8 दिनों के भीतर

चित्र : छाल निकाल कर और पारंपरिक विधि से सड़ाए हुए रेशों को आमने–सामने प्रदर्शन

सड़ाने की प्रक्रिया पूरी चुकने के बाद सड़ी हुई छाल को पानी में धुलने पर 2 और 3 ग्रेड का सुनहरा चमकदार बेहतर गुणवत्ता वाला रेशा प्राप्त होता है। निर्जाफ्ट में विकसित सड़ाने की नई तकनीक का इस्तेमाल करके कम से कम 1 प्रतिशत अधिक रेशा प्राप्त किया जाता है क्योंकि छाल निकालने और सड़ी हुई छाल को धुलने के दौरान रेशा की न्यूनतम हानि होती है। निर्जाफ्ट प्रौद्योगिकी में पौधों को सड़ाने के लिए काफी कम अनुपात 1:1 में जल इस्तेमाल होता है जबकि पारंपरिक तरीके से पौधों को सड़ाने के लिए 1:20 से 25 अनुपात में पानी की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, सड़ाने की पारंपरिक विधि में जूट डंठल को पानी में 2 से 3 सप्ताह तक डूबा रहने के बाद उसके ऊपर की छाल उतार कर प्राप्त डंठल हरे पौधों के ऊपर की छाल उतारकर प्राप्त डंठल की तुलना में अक्षत, मजबूत और गुणवत्ता वाला होता है। जूट का डंठल किसानों के लिए ईंधन, बाड़ लगाने, पान की खेती में पान की बेलें चढ़ाने आदि के लिए महत्वपूर्ण उप–उत्पाद है। पश्चिम बंगाल के विभिन्न जिलों के ब्लॉक में इस तकनीक का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया गया है जिसमें किसानों, राज्य कृषि अधिकारियों और गैर–सरकारी संगठनों ने भाग लिया।

जूट छाल सड़ाने की विधि :

100 किलोग्राम हरे पौधों से निकाली गई छाल	40 किलोग्राम
एक क्विंटल हरे पौधों को सड़ाने के लिए आवश्यक पानी की मात्रा	100 लीटर
प्रति लीटर पानी में घोल तैयार करने के लिए आवश्यक रसायन की मात्रा	7 ग्राम
सड़ाने का औसत समय	7–10 दिन

वेगवर्धक रसायनों का इस्तेमाल कर पूरे जूट पौधों को सड़ाना

छाल सड़ाने के कई फायदे होने के बावजूद, इस काम को करना मुश्किल हो जाता है क्योंकि इस प्रक्रिया में जूट पौधों की छाल उतारने में बहुत समय लगता है। हाल ही में विकसित किए गए रिबन को एक बीघा भूमि से प्राप्त हरे जूट की टहनियों की ऊपर की छाल उतारने में 3–4 दिन लगते हैं। इसके अलावा, इसमें अधिक मजदूरों की आवश्यकता होती है इसलिए, इस प्रौद्योगिकी का उपयोग में किसान अपनी रुचि खो रहे हैं पर वे इसमें कुछ रूपान्तरण के साथ पारंपरिक तकनीक का उपयोग करने के लिए उत्सुक हैं। इस वजह से वेगवर्धक रसायनों का उपयोग करके सम्पूर्ण जूट पौधों को सड़ाना इस दिशा में बेहतर उपलब्धि है।

संस्थान ने सड़ाने की प्रौद्योगिकी को रूपांतरित किया है जिससे रेशा निष्कर्षण में ज्यादा समय नहीं लगता है और पानी की कम मात्रा में आवश्यकता होती है। इस प्रक्रिया में निष्पत्रित जूट बंडलों (50 किलोग्राम) को एक टैंक में डुबोते हैं या पौधों को सड़ाने के लिए पानी के अनुपात के साथ सीमित जल श्रोतों को 1:2 में रखते हैं। बंडलों को उल्टा करके में खड़ा रखते हैं और एक स्थान पर लगभग 30–40 बंडलों को रखा जा सकता है। सड़ाने वाले वेगवर्धक रसायन को टैंक में डालके पानी मिलाकर पतला घोल बनाते हैं और उसमें पौधों को समान रूप से भिंगोकर ऊपर से कुछ पैकेटों का रसायन भुरक देते हैं। अंत में पौधों को अनुपयोगी जूट हेसियन से ढप देते हैं। पानी में पौधों को डुबोने के लिए हेसियन के ऊपर वजन डालते हैं। बंडलों को समय–समय पर पलटते रहते हैं ताकि पौधों को समरूप सड़ने का पर्यावरण मिलता रहे इस प्रक्रिया से सड़ाने में अधिक समय अर्थात् 10–12 दिन लगते हैं और रेशा की गुणवत्ता लगभग दो ग्रेड ऊपर पाई गई। इससे किसानों को प्रति क्विंटल जूट रेशा उपज के लिए 500–600 रुपये का आर्थिक लाभ मिल सकता है।

जूट को त्वरित सड़ाने के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी एक नज़र में–

मानकीकृत मापदंडों से परिपूर्ण सड़ाने के रासायनिक एजेंटों का नुस्खा नीचे दिया गया है। 100 किलोग्राम हरे जूट पौधों के लिए पैरामीटर नीचे प्रस्तुत किए गए हैं।

चित्र सम्पूर्ण जूट पौधों को त्वरित सड़ाने की तकनीक का प्रदर्शन

भौतिक एवं भौतिक–रासायनिक मापदंड

सड़ाने वाले पानी का प्रारंभिक पीएच	10.5–11.5
सड़ाने की अंतिम क्रिया का पीएच	3.5–4.5
पानी का औसत तापमान	25–35 डिग्री सेल्सियस
औसत वायुमंडलीय सापेक्ष आर्द्रता (आरएच)	85–90 प्रतिशत
सड़ने की क्रिया पूर्ण होने की अवधि	7–10 दिन

रासायनिक तरीके से सड़ाए गए जूट रेशे वाले धागे के पैरामीटर मान

रेशा की विशेषताएं

रेशा मजबूती	22.5 –26.3 ग्राम/टेक्स
रेशा बारीकी	2.6–3.2 टेक
औसत मूलांश	<5%
औसत रेशा ग्रेड	टीडी–4

रासायनिक तरीके से सड़ाए गए 8 पाउंड जूट धागा के गुणधर्म

औसत दृढ़ता	23.24 सीएन/टेक
टूटने की क्रिया	2.7 एमएन/टेक्स एम
वास्तविक घनत्व	1.48 ग्राम/सेमी 3
रेशा बंडल दृढ़ता	20.3–32.6 ग्राम/टेक

सड़ाने की पारंपरिक तकनीक की तुलना में सड़ाने की अत्याधुनिक तकनीक के अनेक लाभ हैं –

1) रेशा निकालकर त्वरित सड़ानाः सड़ाने की परंपरागत विधि में 15–20 दिन लगते हैं जबकि निर्जाफ्ट की रेशा निष्कर्षण उपरांत सड़ाने की अत्याधुनिक तकनीक से सड़ाने में 7–8 दिन लगते हैं।

2) पानी की कम आवश्यकताः परंपरागत विधि से पौधों को सड़ाने के लिए 20 से 25 गुना पानी की आवश्यकता होती है जबकि रासायनिक विधि में पौधों को सड़ाने के लिए पानी का अनुपात 1:1 रहता है।

3) बेहतर गुणवत्ता वाला रेशाः निर्जाफ्ट द्वारा विकसित छाल सड़ाने की विधि से प्राप्त रेशा रंग, मजबूती, बारीकी जैसे गुणों की दृष्टि से बेहतर होता है और बीआईएस मानक के अनुसार इसे 3 से 4 ग्रेड के बीच वर्गीकृत किया जाता है जबकि पारंपरिक विधि से सड़ाने में 4, 5 ग्रेड का ही नहीं बल्कि 6 ग्रेड वाला रेशा प्राप्त होता है।

4) अधिक रेशा की प्राप्तिः सड़ाने की पारंपरिक तकनीक से हरे पौधों के वजन का 6: रेशा मिलता है जबकि निर्जाफ्ट की छाल निष्कर्षण उपरांत सड़ाने की तकनीक से कम से कम 1: और अधिक रेशा मिलता है क्योकि जूट के पौधों के ऊपर से बड़े जतन से छाल उतारी जाती है और न्यूनतम बायोमास का प्रबंधन करना पड़ता है।

5) न्यूनतम बायोमास का प्रबंधन : सड़ाने की परंपरागत विधि में पानी में पूरे पौधों को डुबाकर सड़ाना होता है जबकि रासायनिक पद्यति में जूट पौधों के ऊपर की छाल उतारने से बायोमास का केवल 40: का प्रबंधन करना पड़ता है क्योंकि छाल निकाल लेने के बाद जूट डंठल के रूप में लगभग 60: बायोमास निकाल कर अलग हो जाता है।

6) पारिस्थितिकी–हितैषी : छाल सड़ाना बेहतर पर्यावरण–अनुकूल है क्योंकि इससे निकलने वाली गंध तथा गंदगी से जल स्त्रोत प्रदूषित नहीं होते हैं और रेशा निष्कर्षण के दौरान प्रदूषित पानी में काम करने के लिए व्यावसायिक खतरा और स्वास्थ्य जोखिम से किसानों को राहत मिलती है। इस पदयति में इस्तेमाल होने वाले रसायन खतरनाक नहीं हैं।

7) लागत लाभ : छाल निकाल कर रासायनिक विधि से सड़ाने से उन्नत एवं अधिक मात्रा में रेशा प्राप्त होता है जिससे जूट किसान अपनी उपज का अधिक बाजार मूल्य पाते हैं।

हिंदी के विकास में कोलकाता की साहित्यिक संस्थाओं का योगदान

डा. सत्य प्रकाश तिवारी

हिंदी के विकास में बंगाल की विभिन्न साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं की उल्लेखनीय भूमिका रही है। यद्यपि "हिंदी के विकास में कोलकाता की साहित्यिक संस्थाओं का योगदान" विषय पर कुछ लिखने से पहले यह उल्लेख करना आवश्यक है कि कुछ ऐसे भी व्यक्ति हुए जो अपने आप में किसी संस्था से कम नही थे। उन्होंने अपने व्यक्तिगत प्रयासों से हिंदी साहित्य और पत्रकारिता को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इनमें पंडित जुगल किशोर शुक्ल, पंडित छोटूलाल मिश्र और पंडित दुर्गादत्त मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, अमृतलाल चक्रवर्ती, बाबूराव विष्णु पराड़कर इत्यादि मुख्य हैं – ऐसे नामों की एक लम्बी सूची है।

हिंदी के विकास की चर्चा फोर्ट विलियम कॉलेज (1800–1854) के योगदान के बगैर की ही नहीं जा सकती। इस कॉलेज में हिंदी खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा–गद्य–रचनाओं की एक अभूतपूर्व योजना निर्मित हुई थी। इस कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष गिलक्रिस्ट ने कई संकलन ग्रंथो, कोश, व्याकरण आदि की तो रचना की ही, साथ–ही–साथ अन्य अध्यापकों को भी प्रेरित करते रहें। लल्लूलाल का प्रेमसागर, सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' और 'रामचरित्र' के निर्माण में फोर्ट विलियम कॉलेज की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। "प्राइस की अध्यक्षता में, आधुनिक अर्थ में, 'हिंदी' शब्द का प्रयोग पहली बार हुआ और हिंदी तथा उर्दू का अंतर स्पष्ट किया गया। हम उनके विचारों से सहमत हों या न हों किन्तु इतना निश्चित है कि खड़ी बोली हिंदी के प्रारंभिक विकास (देन नहीं) की दृष्टि से बंगाल की देन नकारी नहीं जा सकती।

कोलकाता की जिन साहित्यिक संस्थाओं ने हिंदी के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है उनमें प्रमुख हैं – बड़ाबाजार लाइब्रेरी, श्री महावीर पुस्तकालय, माहेश्वरी पुस्तकालय, बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय, सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, बंगीय हिंदी परिषद, भारतीय संस्कृति संसद, भारतीय विद्या मंदिर, भारतीय भाषा परिषद, राजा राममोहन लाइब्रेरी इत्यादि।

बड़ाबाजार लाइब्रेरी की स्थापना पंडित केशव प्रसाद मिश्र ने 1900 ई० में मुरलीधर गोयनका के सहयोग से की। आ० गोविन्द नारायण मिश्र, पंडित छोटूलाल मिश्र, पंडित दुर्गा प्रसाद मिश्र, लक्खीनारायण वर्मन इत्यादि व्यक्ति इस पुस्तकालय के मुख्य प्रेरणा स्रोत थे। 24 दिसम्बर 1952 में पुस्तकालय के स्वर्ण जयंती समारोह का उद्घाटन करते हुए तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसाद ने न सिर्फ अपने पाठकीय अनुभव को साँझा किया बल्कि हिंदी के विकास में इस पुस्तकालय के योगदान को भी रेखांकित किया।

सन् 1908 ई० में दिगम्बर जैन युवक समिति के अंतर्गत श्री महावीर पुस्तकालय की स्थापना की गई। माहेश्वरी सभा के अंतर्गत स्थापित इस पुस्तकालय के संस्थापकों में रामकृष्ण मेहता, जीवनदास पुगलिया, वासुदेव आचार्य किशन गोपाल बिहानी, नन्दलाल नाथानी इत्यादि प्रमुख थे। कवि सम्मेलनों के आयोजन में

इस पुस्तकालय की काफी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह पुस्तकालय निराला एवं महादेवी वर्मा जैसे साहित्यकारों का अभिनन्दन कर चुका है।

राधाकृष्ण नेवटिया, नानुराम सराफ, महादेवलाल झुनझुनवाला, मदनलाल जाजोदिया, सागरमल जाजोदिया एवं सोहनलाल जाजोदिया ने मिलकर सन् 1916 ई० में कोलकाता के 'सूतापट्टी' में "बाल सभा पुस्तकालय'' की स्थापना की। सन् 1918 में इसका नाम बदलकर "श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय" रख दिया गया। कुमारसभा पुस्तकालय ने स्वतंत्रता पूर्व से लेकर अब तक विभिन्न सांस्कृतिक एवं साहित्यिक कार्यक्रमों के द्वारा हिंदी के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया है।

वर्तमान में इस पुस्तकालय में प्रायः 25000 से भी अधिक पुस्तकें एवं ग्रंथ संग्रहित हैं।

इसी कड़ी में सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय भी आता है जिसकी स्थापना 1914 ई० में श्री मोहनलाल जालान ने अपने पिता की स्मृति में की। 186 चित्तरंजन एवेंन्यू में आज भी यह पुस्तकालय हिंदी के विकास हेतु निरंतर अपनी सार्थक भूमिका का निर्वहन कर रहा है। इस पुस्तकालय में अनुसंधानकर्ताओं हेतु विशेष सुविधा उपलब्ध है। प्रति वर्ष तुलसी जयंती का आयोजन इसका एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। फिलहाल इस पुस्तकालय में 30000 से भी अधिक पुस्तकें एवं 3500 से अधिक पांडुलिपियाँ मौजूद हैं।

सन् 1945 ई० में हिंदी के चतुर्दिक विकास को ध्यान में रखते हुए "बंगीय हिंदी परिषद" की स्थापना की गई। आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, कल्याणमल लोढ़ा, मोहन सिंह सेंगर, श्रीकांत ठाकुर, रामकुमार केजरीवाल इत्यादि के समन्वित प्रयास के फलस्वरूप यह संस्था अस्तित्व में आई। कतिपय कारणों से लगभग 1982 से 2003 तक यह संस्था निष्क्रीय सी बन गई थी। पुनः यह संस्था अपने गौरवपूर्ण इतिहास की ओर लौटने हेतु प्रयासरत है। जन दृभारती पत्रिका परिषद की गौरपूर्ण परम्परा को बनाये हुए है।

वैसे तो भारतीय विद्या मंदिर की स्थापना 1948 में बीकानेर में पाकिस्तान से आ रहे शरणार्थियों के शिक्षण के उद्देश्य से हुई पर इस सन्दर्भ में इसकी चर्चा यहाँ करना इसलिए प्रासंगिक है कि 2005 में सिम्पलेक्स इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड, कोलकाता के सौजन्य से भारतीय विद्या मंदिर का प्रकाशन विभाग कोलकाता स्थानांतरित हुआ। स्थानांतरण के पश्चात वैचारिकी शोध–पत्रिका को अप्रैल–मई 2010 से त्रैमासिक की जगह द्वैमासिक कर दिया गया। 2005 से ही हिंदी के विकास में इस पत्रिका ने कई महत्वपूर्ण विन्दुओं को रेखांकित किया है।

भारतीय भाषाओं की साहित्यिक विरासत को समृद्ध करने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए 1975 में भारतीय

भाषा परिषद की स्थापना हुई। इसकी स्थापना में सीताराम सेकसरिया और भागीरथ कनोडिया की प्रमुख भूमिका थी। हिंदी के साथ विभिन्न भारतीय भाषाओँ के मध्य सेतु निर्माण हेतु यह संस्था प्रयासरत है। देश–विदेश में हिंदी की बहुचर्चित पत्रिका 'वागर्थ' का प्रकाशन 1995 से निरंतर भारतीय भाषा परिषद द्वारा किया जा रहा है। विभिन्न साहित्यिक आयोजनों द्वारा यह संस्था अपने उद्देश्यों के साथ निरंतर अग्रसर है।

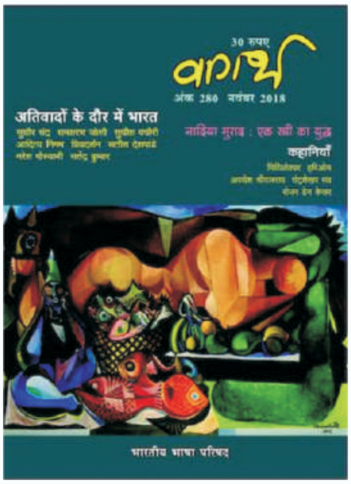

अपने सीमित अनुभव के दायरे में रहते हुए मैं इतना तो कह ही सकता हूँ कि प्राय: सभी उच्च शिक्षण संस्थाओं में आज मुट्ठी भर लोग हैं जो काम कर रहे हैं। यहाँ यह कहना प्रासंगिक होगा कि हिंदी के विकास की जिम्मेदारी सीधे–सीधे जिनके कन्धों पर रही उनमे से कुछ ने तो अपनी भूमिका निभाई पर कई ऐसे लोगों ने भी हिंदी के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया जिनके कन्धों पर सीधे–सीधे हिंदी के विकास की जिम्मेदारी नहीं थी।

हिन्दी के साहित्येतिहास के ढाँचे का पुनर्पाठ

शीतांशु कुमार

हिन्दी के साहित्येतिहास के ढाँचे को व्यवस्थित करने के क्रम में पहला पड़ाव है हिन्दी भाषा के स्वरूप की सही समझ और हिन्दी जाति और उसके साहित्य का वास्तविक प्रतिनिधित्व करने में समर्थ पाठों की पहचान। इसकी प्राथमिक शर्त है ऐतिहासिक चेतना। इतिहास ही वह विधा है जो परंपरा का सही परिचय देने का सामर्थ्य रखती है और उन चिंताओं से हमें रू–ब–रू करवाती है जिन्हें भविष्य का निर्माण करते हुए हमें ध्यान में रखना चाहिए। आजकल नव–उदारीकरण जिस समरूपीकरण के लक्ष्य के साथ आगे बढ़ा है, उसने आर्थिक दृष्टि से क्षमतावान शक्तियों द्वारा विश्व की विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं के नियंत्रित हो जाने या विनष्ट हो जाने की प्रक्रिया को और भी गतिशील कर दिया है। जिस किस्म का पश्चिमीकरण–अमरीकीकरण आरंभ हुआ है उसका सबसे अधिक नुकसान उन्हें उठाना पड़ रहा है जो सबसे अधिक हाशिए पर हैं। छोटे–छोटे समुदायों, समाजों की भाषा, संस्कृति और इतिहास इस प्रक्रिया में सबसे अधिक असुरक्षित हैं। देशी भाषाओं और साहित्य के संदर्भ में चेतना के ह्रास का स्तर कहाँ तक जा पहुँचा है और साधारण जनता में साहित्य की कितनी पैठ बची हुई है, यह कहने की जरूरत नहीं! इसलिए देशी भाषाओं और उसके साहित्य से जुड़े हुए लोगों का दायित्व बहुलतावादी संस्कृतियों के ह्रास के इस दौर में पहले से कहीं गंभीर हो गया है। इस दिशा में हिन्दी और विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों के विद्वानों का एक महत्वपूर्ण दायित्व है कि अपने इतिहास का सही पाठ प्रस्तुत करें और जनसामान्य को उससे परिचित कराएँ।

साहित्येतिहास की संरचना इस ह्रास को पहचानने का महत्वपूर्ण माध्यम हो सकती है। साहित्येतिहास एक ऐसा माध्यम है जिसमें हम अपने सांस्कृतिक अतीत को प्रतिबिम्बित करने वाले महत्वपूर्ण संदर्भों को एकत्रित करते हैं और उसकी समृद्धि से आने वाली पीढ़ियों को परिचित कराते हैं। इस समृद्धि को देश–कालगत सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तनों के आलोक में पहचानने और उसे मानवीय मूल्यों से संपन्न सृजनात्मक लक्ष्यों के लिए हस्तांतरित करने में हम कितने समर्थ हुए हैं यह समझने के लिए साहित्येतिहास उपयुक्त माध्यम है। हिन्दी क्षेत्र और उसकी बहुलतावादी जातीय संस्कृति, भाषाई और साहित्यिक समृद्धि और चेतना को प्रतिबिम्बित करने वाले माध्यमों में साहित्येतिहास का पुनर्पाठ काफी सार्थक साबित हो सकता है।

हिन्दी के साहित्येतिहास के ढाँचे को व्यवस्थित करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि पाठकों को इसका परिचय दिया जाए कि इस भाषा में जो सामर्थ्य है वह हिन्दी प्रदेश की विभिन्न बोलियों से पैदा हुआ है। इसके पश्चात हम हिन्दी कविता का वास्तविक रसास्वादन उन्हें प्रदान करें, जो हिन्दी जाति के समस्त प्रतिनिधियों, चाहे वे रेखता के हों, उर्दू भाषा के हों, हिन्दवी के हों, हिन्दी के हों या दकनी के हों, को समान रूप से महत्व देती हो। न सिर्फ हिन्दी खड़ी बोली की इन विभिन्न शैलियों बल्कि उन विभिन्न बोलियों को भी साहित्येतिहास के ढाँचे में वही स्थान मिलना चाहिए जिनकी वे काबिल हैं। अवधी, ब्रज, भोजपुरी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मगही और ऐसी ही अनेक बोलियों ने अपनी संपदा प्रदान कर हिन्दी खड़ी बोली के आधार पर

खड़ी हिन्दी भाषा को उस ऊँचाई तक पहुँचाया है जहाँ वह आज विद्यमान है। इसलिए इन सभी बोलियों की संपदा का साहित्येतिहास में उचित प्रतिनिधित्व होना चाहिए। साहित्येतिहास को इस तरह अधुनातन बनाकर उसमें उस फैलाव को लाने का प्रयास करना चाहिए जिसे स्वीकार करने से हम हिचकते हैं।

खड़ी बोली को ही वास्तविक हिन्दी मानकर बहुत सारे विद्वान यह तर्क देते हैं कि भक्ति एवं रीतियुगीन साहित्य को हिन्दी साहित्येतिहास का हिस्सा नहीं होना चाहिए। इस तर्क के खिलाफ विस्तार की यहाँ गुंजाइश नहीं है लेकिन इतना कहना भी पर्याप्त है कि खड़ी बोली हिन्दी कोई आधुनिककालीन परिघटना नहीं है। अमीर खुसरो के साहित्य में भी हमें खड़ी बोली दिखाई देती है। तात्पर्य यह है कि अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की तरह व्यापारिक पूँजीवाद के दौर में खड़ी बोली भी लगातार विकसित हो रही थी और साहित्य में उसका इस्तेमाल हो रहा था। इसलिए खड़ी बोली के साहित्य की जब बात की जाए तो अन्य बोलियों की तरह इसके भी हजार वर्ष के साहित्य की बात की जाए। दूसरा तर्क यह है कि भक्तियुगीन रीतियुगीन साहित्य के नाम पर हम जिन बोलियों को पढ़ाते हैं वह हिन्दी जाति और हिन्दी प्रदेश की बोलियाँ हैं जिनसे परिचय के बगैर न तो हिन्दी भाषा के वर्तमान स्वरूप का वास्तविक चित्र खींचा जा सकता है न ही उसके साहित्य की सांस्कृतिक विरासत की ठीक–ठीक पहचान की जा सकती है। साहित्य सिर्फ एक बोली से परिचय नहीं करवाता बल्कि पूरी संस्कृति से परिचित कराता है। ऐसे में इन सभी बोलियों के साहित्य को साहित्येतिहास से बहिष्कृत कर देना अपनी जातीय संस्कृति की पहचान को सीमित कर देने जैसा है। वास्तविकता तो यह है कि इन बोलियों में ही वह साहित्य है जो हमारी प्रगतिशील चेतना का प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि भक्ति युग में इन बोलियों ने ही जनता से वह संपर्क स्थापित किया था जो साहित्य को करना चाहिए।

हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि साहित्य सिर्फ परिस्थितयों पर ही नहीं चेतना के स्तर पर भी निर्भर करता है। आधुनिक साहित्य के विकास की संभावना या आधुनिक विधाओं के विकास की संभावना सामाजिक परिवर्तन के बाद परिवर्तित सामाजिक चेतना के प्रभाव से ही संभव था। भक्तिकालीन साहित्य में हमारे पास ऐसा बहुत कुछ है जो वैकल्पिक इतिहास से हमे परिचित कराता है। इसके पहले भी सिद्धों–बौद्धों ने एकदम अलग किस्म की रचनाएँ हमें प्रदान की। अगर सामंतवाद और उस परिवेश में कला के स्वरूप की समझ विकसित करनी है तो हमें राजदरबारों में पले साहित्य का अध्ययन करना ही होगा लेकिन वैकल्पिक इतिहास का प्रतिनिधित्व करने वाले साहित्य को त्याग कर अगर यह किया जा रहा है तो यह प्रगतिविरोधी है। इसलिए साहित्येतिहास के ढाँचे में इस किस्म की रचनाओं का होना प्रासंगिक और लाजमी है।

जब हम साहित्येतिहास के अध्ययन में प्रस्थान बिंदु गलत या सीमित रखते हैं तो सबसे बड़ी समस्या आती है चुनाव के संदर्भ में। क्या लें और क्या छोड़ें? युग के विस्तार के साथ चुनाव की प्रक्रिया में कई नए प्रश्न उठ खड़े होते हैं। प्रतिमान बनते–बिगड़ते रहते हैं। वर्तमान के संदर्भ में कठिनाई इसलिए ज्यादा पैदा होती है क्योंकि हम स्वयं विचारधारात्मक प्रवाहों के बीच होते हैं, स्थिर जल में नहीं। हिन्दी भाषा की विकास परंपरा के संदर्भ में हम यह कठिनाई बड़े पैमाने पर देखते हैं। रूप और संवेदना का ऐसा अधूरा स्वरूप उन्नीसवीं

सदी में हमे दिखाई देता है जो आश्चर्यचकित कर देता है। इस आश्चर्य से हम मुक्त हो गए होते अगर उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में रूप की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध उर्दू की कविता को अपनी विरासत के रूप में पहचान पाए होते। वह फाँक हमें इस सामासिकता के बाद नहीं दिखाई देता जिससे कि आज भी साहित्येतिहास दूषित है।

रू५ की इस ऊँचाई को पकड़ने के साथ संवेदना की गहराई को प्रतिबिम्बित करने वाले ब्रज, अवधी, राजस्थानी इत्यादि के साहित्य का व्यापक परिचय साहित्येतिहास में जरूरी है। इसी के साथ लोक साहित्य की उपेक्षा भी नहीं होनी चाहिए। वस्तुतः समस्या अभिजात्यवादी मनोवृत्ति के विकास की है। साहित्य को 'परिष्कृत' रुचि वाले लोगों ने एक खास शक्ल देने की ठान रखी है और लोक साहित्य के माध्यम से उसे इस अवनतिकारी प्रवृत्ति से मुक्त कराने की जरूरत है। मैनेजर पाण्डेय ने चिह्नित किया है कि किस तरह आचार्य रामचंद्र शुक्ल मानते थे कि साहित्य के अनुशीलन के लिए ग्रामगीतों की ओर उतना ही ध्यान देने की जरूरत है जितना पंडितों द्वारा प्रवर्तित काव्य परंपरा के अनुशीलन की ओर। जीवन अगर बहुरंगी है तो साहित्य का इतिहास भी बहुरंगी होना चाहिए। सरकार ने अकादमिक जगत को जिस तरह अभिजनवादी रूप देने की मंशा बना ली है ऐसे में यह काम और भी गंभीर हो जाता है कि गाँव–देहात से पनपने वाली कविता से संबंध बनाया जाए। अपने इतिहास के प्रति जो संवेदना लोक से उपजने वाला साहित्य पैदा करता है वह और कोई साहित्य नहीं। लोगों को संवेदनशील बना कर अपने साथ जोड़ने में उसकी भूमिका को कम करके नहीं आँका जाना चाहिए। लोक संस्कृति हमेशा ही जनता की चित्तवृत्तियों की वास्तविक अनुभूति होती है। उसमें जनता का दुख दर्द सबसे स्वाभाविक रूप में प्रकट होता है इसलिए उसकी सुरक्षा अलम् है। साहित्येतिहास के ढाँचे की पुनर्निर्मिति में ये प्रश्न हमारी चिंता के केंद्र में होने चाहिए। यह चिंता जब हमाने विचार का हिस्सा होगी तब हम यह जान पाएंगे कि जब साहित्य के मूल्यांकन के तमाम रूपवादी 'मानदंड' बनाकर बहुत सारे साहित्य को जो परिष्कृत रुचि का नहीं प्रतीत होता साहित्यिकता के दायरे से बहिष्कृत कर दिया गया है, दलित चेतना के नायक कबीर को अस्वीकार करना इतना कठिन क्यों हो जाता है। हमें कबीर और उस बोध से संपन्न और रचनाकारों को साहित्येतिहास में जगह मुहैया करानी होगी। उन्नीसवीं सदी में और अतीत में हमारे हाशिए के समाज की संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने वाली जो रचनाएँ हैं उन्हें तलाश कर सामने लाने की जरूरत है। साहित्येतिहास का ढाँचा सिर्फ समृद्ध और परिष्कृत रुचि वालों का ढाँचा बनकर रह जाएगा अगर हम अतीत को सिर्फ अभिजात्य की नजर से देखेंगे। निश्चय ही हमारे साहित्येतिहास में जितनी अधिक व्यापकता होगी विद्यार्थी उतनी ही गहराई तक पहुँचेंगे। इस व्यापकता की बात तो दूर, हमने तो पाठकों को 'डायस्पोरा राइटिंग' और दकनी के साहित्य, से भी वंचित करके रखा हुआ है। सूरीनाम, मॉरीशस और फिजी जैसे देशों में बीसवीं सदी में लिखे जा रहे साहित्य के महत्व से हिन्दी साहित्य का विद्यार्थी समुचित ढंग से अभी तक परिचित नहीं है।

कहना न होगा कि हमारे साहित्येतिहास के ढाँचे में बुनियादी परिवर्तनों की गुंजाईश है और उसके निर्माण में बेहद सतर्कता और चिन्तन–मनन की जरूरत है। साहित्येतिहास के निर्माण और पाठों के निर्धारण के लिए

जितनी तैयारी की जरूरत है, हम उससे काफी दूर हैं। बहुत सारे विचार हैं, जरूरते हैं, आकांक्षाएँ हैं, संवेदनाएँ हैं जिन्हें समेटा जाना है और बहुत कुछ अनावश्यक है, प्रगति विरोधी है, यथास्थितिवादी है, प्रतिक्रियावादी है जिसे छोड़ा जाना है। एक सामान्य सा उदाहरण लें। उन्नीसवीं सदी में साहित्येतिहासकारों में ग्रियर्सन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान है, लेकिन इस कर्मठ इतिहासकार ने ही अपने ग्रंथ में हिन्दी को खंड–खंड में बाँट कर रख दिया। ग्रियर्सन ने अपने इतिहास–ग्रंथ की प्रस्तावना में यह बताया है कि उन्होंने उर्दू को अपने इतिहास का हिस्सा नहीं बनाया है, वह भी बस इसलिए कि इस पर तासी ने अपने ग्रंथ में विचार कर लिया है। सवाल यह उठता है कि इस तरह के प्रतिमानों के आधार पर क्या किसी इतिहास ग्रंथ की रूपरेखा तैयार की जा सकती है। उनके इस तरह के निर्णय से हिन्दी की जातीय चेतना कितनी बाधित हुई है इस पर विचार करने की जरूरत है। औपनिवेशिक दौर में हिंदी की व्यापकता को चिह्नित करने के बजाय, उसके जातीय तत्वों को पहचानने के बजाय उनसे प्रभावित विभिन्न विद्वानों ने हिन्दी को जिस तरह अलगाववाद की ओर धकेल दिया, जरूरी है कि आज हिन्दी को उन प्रतिमानों से अलग किया जाए।

इन प्रतिमानों पर तैयार परवर्ती इतिहास ग्रंथों में जनता का कवि नजीर किस तरह हिन्दी साहित्य से धार्मिक अस्मिताई आधार पर अलग कर दिया गया और हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी अपनी जातीय परंपरा के अत्यंत महत्वपूर्ण कवि को पढ़ने से किस कारण से वंचित रह गए यह विचारणीय है। मजेदार यह है कि उर्दू को हिन्दी से अलग करके देखने वाले ग्रियर्सन के इतिहास में नजीर को स्थान मिला हुआ है। इतने प्रतिमानों के बावजूद नजीर की कविता के लिए सही खेमा वे तैयार नहीं कर पाए। हमें ध्यान देना होगा कि उनकी तरह ही न जाने कितने और ऐसे कवि हैं जो हमार जातीय परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं लेकिन हमारी सीमित इतिहास–दृष्टि ने उनके साथ कितना अन्याय किया है।

कहना न होगा कि हिन्दी भाषा की विकास परंपरा को समझते हुए साहित्येतिहास के ढाँचे को अस्मिताई सीमाओं से मुक्त करते हुए नए रूप में प्रस्तुत करने की जरूरत आज भी बनी हुई है। इतिहास का कालविभाजन और नामकरण करते हुए अपनी दृष्टि में पिछले हजार वर्षों की साहित्यिक परंपरा को ध्यान में रखना जरूरी है। अगर हम यह नहीं करेंगे तो या तो हम आधुनिक काल को 'महारानी विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान' के तौर पर देखेंगे या लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय की तरह ब्रिटिश काल के रूप में। सवाल है कि आखिर जो कालविभाजन युगीन प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर होना चाहिए उस पर कई विद्वानों में अंग्रेजियत और ईसाईयत कैसे हावी हो गई?क्यों कई लोगों को उन्नीसवीं सदी में मात्र नवजागरण दिखाई देता है और यह नहीं दिखाई देता कि किस तरह इस दौर में अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान का पूरा दोहन कर लिया? उर्दू की विकास परंपरा को समझे बगैर तो हिन्दी के साहित्येतिहास का कालविभाजन और नामकरण और भी अधूरा हो जाएगा। किसी रचनाकार को अपनी भाषा और साहित्य का आदर्श बनाकर इतिहास को ऐसे प्रस्तुत नहीं करना चाहिए कि बाकी साहित्य ने जैसे समाज को प्रतिबिम्बित या प्रभावित ही न किया हो। इसका प्रभाव कितना गंभीर हो सकता है इसकी सतर्कता इतिहासकार की चेतना में होनी चाहिए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी के सर्वाधिक समर्थ इतिहासकार रहे और उनसे जहाँ तक संभव हुआ उन्होंने अपनी दृष्टि को तार्किक और प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया। किन्तु, उनके भी इतिहास ग्रंथ में ग्रियर्सन की सीमाओं की छाया कहीं–कहीं दिखाई ही दे जाती है। आज भी विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिन्दी साहित्य के इतिहास के जो पाठ्यक्रम तैयार किए जाते हैं उन पर विभिन्न वजहों से उत्पन्न अलगाववादी दृष्टियाँ हावी हो जाती हैं और हम हिन्दी जाति के कई अनन्य गायकों के सुरों को सुनने से वंचित रह जाते हैं, उनके साहित्य को आत्मसात करने से वंचित रह जाते हैं। इसलिए जरूरी है कि साहित्येतिहास के ढाँचे का व्यवस्थित, तथ्यात्मक और तर्कसंगत ढंग से हम पुनर्पाठ करें और भविष्य की पीढ़ियों को अपनी परंपरा का वास्तविक आस्वादन प्राप्त करें।

भीष्म साहनी का स्त्री विमर्श

विजेता साव

भीष्म साहनी

भीष्म–साहनी के स्त्री–विमर्श पर बात करनी है सिर्फ इसलिए नहीं कि 'स्त्री' पर बोलना, सोचना, लिखना या बहस जारी रखना आज के समय का 'फैशन' या ट्रेण्ड' है, दिल बहलाव की चीज या स्त्री सबसे सस्ती और मनोरंजक विषय है? एक ऐसा 'उत्पाद' जिस पर जब चाहे कुछ भी लिखा या कहा जा सकता है, हास–परिहास और अपमान की वस्तु–सर्वदा सुलभ! निश्चित रूप से नहीं। 'स्त्री' ना तो बहस का एक मुद्दा है और ना दिल बहलाव की वस्तु वास्तव में जननी, प्रेम से भरी और बनी स्त्री सदियों से अपने सम्पूर्ण, त्याग, प्रेम के बाद भी निरंतर धर्म, पुरूष और पूंजी के हाथों जिस कैद में जकड़ी हुई, घुटती हुई सांसे ले रही है, उसे उससे मुक्ति दिलाना, स्वंय के होने के अथ को ढूंढना, स्वंय की दृष्टि साथ–साथ सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाना, स्वावलंबन के साथ अपनी इच्छा–आकांक्षाओं के विहंग को उन्मुकत गगन में उड़ान भरने देना ही स्त्री–विमर्श के केन्द्र में है। स्त्री का समस्त संघर्ष, मनुष्य के रूप में उसकी प्रतिष्ठा का संघर्ष है।

'विमर्श' जिसक व्युत्पिपत्रिपरक अर्थ है–सोचना, समझना, आलोचना करना अर्थात् सोच विचार कर किसी तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना। इस तरह स्त्री विमर्श से तात्पर्य है स्त्रियों की स्थितियों पर चिंतन–मनन। आधुनिक काल के आरंभ से लेकर अब तक या यों कहें कि भारतेन्दु से लेकर अब तक स्त्री की ह्रासोन्मुख स्थिति पर ना जाने कितनी बातें हुई और हे रहीं हैं और उनके उत्थान के विचार को केन्द्र में रख्कर अनगिनत रचनाएँ भी हुई। इनमें भीष्म साहनी का नाम कुछ इस तरह उभरकर आता है जैसे काले बादलों को भेदती हुयी चमकीली घूप.... जिसमें उष्मा भी है और प्रकाश भी .... अंधेरे को निगलती, ठंडेपन को सोखती . ... ।

स्त्री समस्या पर भीष्म साहनी की दृष्टि कितनी पैनी थी, स्त्री–अस्तित्व, स्त्री गरिमा, स्त्री–सौन्दर्य, घर–परिवार, जीवन एवं समाज में स्त्री की स्थिति क्या थी, क्या है और क्या होनी चाहिए इत्यादि कई ऐसे सवाल हैं जो कि हवा में बिखरें और भीगे हैं, ऐसे ही कुछ सवालों की पड़ताल साहनी जी की कुछ विशेष रचनाओं में करने का प्रयास किया है। भीष्म साहनी के रचना संसार की कुछ स्त्री पात्र जैसे, 'माधवी', एवं 'शामनाथ की माँ' के माध्यम से हर उम्र, आयु, वर्ग की स्त्री–मनोदशा, स्त्री संघर्ष अस्मिता की तलाश की एक कोशिश और साथ ही स्त्री इच्छा, स्त्री समस्या को उधारते हुए जड़ होती चेतना एवं संवेदना में एक कंकड़ मारने की कोशिश .....

स्त्री विमर्श के सन्दर्भ में भीष्म साहनी का 'माधवी' नाटक विशिष्ट स्थान रखता है। इस नाटक के माध्यम से भीष्म साहनी ने जहाँ एक ओर सदियों शोषण के चक्र में पिस रही नारी की कारूणिक दशा का वर्णन किया है

वहीं यह भी बताया है कि स्त्री, चाहे वह किसी भी वर्ग जाति अथवा सम्प्रदाय की हो, समाज के प्रत्येक क्षेत्र में उसका शोषण होता आया है। कहीं वह आर्थिक शोषण की शिकार है तो कहीं असमानता और यौन शोषण तो कहीं परम्परा एवं संस्कार के नाम पर उसका दैहिक, मानसिक शोषण होता रहता है। पुरूष प्रधान समाज में उसकी शिनाख्त दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में होती है एवं वह अपने जायज अधिकारों तथा सामाजिक हैसियत से वंचित जीवन जीने को बाध्य है। लेकिन 'माधवी' इस बाध्यता के तोड़ती है; वह षड़यन्त्र का शिकार तो होती है परंतु टूटती नहीं।

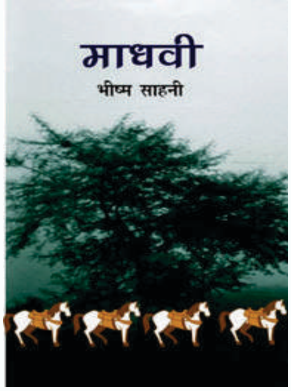

स्त्री की जागरूकता, सजगता ही स्त्री विमर्श को जन्म देती है। भीष्म साहनी ने 'माधवी' नाटक में इस सजगता को दर्शाया है। माधवी अपने पिता यदाति द्वारा एक वस्तु के रूप में दान में दे दी जाती है और माधवी गालब के साथ उसके उद्देश्य पूति में सहायिक बन चली जाती है परंतु गौरतलब है कि स्वप्न मिथक चढ़कर साहनी जी ने यह स्पष्ट किया है कि माधवी को गालब अपन स्वप्नपुरूष प्रतीत होता है वह कहती है–'उस दिन प्रातः जब तुम आश्रम में आये तो मुझे लगा जैसे तुम सीधे मेरे सपने में से निकलकर अ गये हो।' भीष्म साहनी ने यह दिखाया हे कि पितृसन्तात्मक समाज में स्त्री को व्यक्ति नहीं 'वस्तु' के रूप में देखा जाता है। स्त्री इस कटु सत्य को समझती है परंतु स्त्री का रोम–रोम प्रेम से गढ़ा हुआ है। स्त्री अपने आप में प्रेम है। पुरूष हर रूप में हर उम्र में उसका शोषण करता है, उससे अपने स्वार्थ की पूर्ति करता है। उसे आज की 'यूज एं थ्रो' पॉलिसी के तहत इस्तेमाल करता है। यह मानकर, सोचकर कि स्त्री मात्र एक देह है, ह्रदय, मस्तिष्क से वंचित मात्र एक देह, जिसका अपनी इच्छा, मर्जी, जरूरत के अनुसार वह प्रयोग कर सकता है परतुं पुरूष अपनी सारी चालाकियाँ, साजिशों एवं षड़यंत्रों के बाद भी स्त्री के प्रेम, समर्पण एवं त्याग के सामने बौना दिखने लगता है। स्त्री का प्रेम, उसके भीतर का समर्पण उसे अंदर से इतना विशाल, गहरा और व्यापक बना देता है कि बार–बार प्रेम में छले जाने पर भी, विश्वास टूटने पर भी वह प्रेम करना छोड़ नहीं पाती क्योंकि वही उसका सर्वस्व है। विष को अमृत मान कर पीने का साहस स्त्री ही कर सकती है। यह भीष्म साहनी ने इस नाटक में स्पष्ट किया है। स्त्री का आत्म विश्वास, उसकी अपनी दृढ़ता उसे हर शोषण एवं दोहन के बाद भी मजबूती से खड़े रखती है और यही स्त्री को पुरूष की तुलना में महान बनाता है। माधवी भी इसलिए दो–दो राजाओं के पुत्र को जन्म देने के बाद, उसके द्वारा त्यागे जाने के बाद, अपने पिता द्वारा एक वस्तु के रूप में दान देने के बाद, गालब द्वारा छले जाने के बाद भी अपने स्त्री होने के स्वामिभमान के साथ अंत तक खड़ी रहती है। 'चिरयौवन' का अशीर्वाद होते हुए भी अनुष्ठान करके स्वयं को गालब के लिए युवती बनकर प्रस्तुत नहीं करती क्योंकि उसका स्त्री–बोध, स्त्री–स्वाभिमान उसे इसकी इजाजत नहीं देता। वह प्रेम में कृत्रिमत्ता नहीं चाहती – जो है ... जैसी है.... जिस रूप में है.... वह चाहती है कि गालब उसे उसी रूप में स्वीकार करे। स्पष्ट है कि भीष्म साहनी यह बताना चाहते है कि जिस स्त्री को पुरूष मात्र उसके बाहय सौन्दर्य से देखता, जाँचता एवं उसकी छवि का दास या उपासक बना रहता है, वास्तव में स्त्री के लिए उसका अन्तर मन, उसका ह्रदय प्रेम मायने रखता है। वह देह से परे ह्रदय का प्रेम देना और पाना चाहती है। जिस स्त्री देह को पुरूष सर्वस्व मान उसकी पूजा करता है। माधवी उसे मात्र बाह्य आकर्षण मान स्वयं को अनुष्ठान कर उसे बदलने या सजाने से इन्कार करती है। क्योंकि स्त्री देह उसकी अपनी निजी सम्पत्ति है, नाटककार ने स्त्री सजगता को

यहाँ दर्शाया है और इस पारम्पारिक सोच को भी तोड़ा है कि स्त्री मात्र एक देह है, श्रृंगार एवं बाहरी सौन्दर्य से भरी हुई। वास्तव में स्त्री एक शक्ति है, एक साहस, एक हौसला, एक चाहत स्वयं के लिए भी और जिसे वो प्रेम करती है उसके लिए भी।

स्त्री को सदैव से अबला, कोमलांगी, आश्रिता जैसे सम्बोधनों से संबोधित किया जाता रहा है परंतु भीष्म साहनी ने इस नाटक में इस 'कन्सेप्ट' को भी तोड़ा है। स्त्री सहारा ढूंढती नहीं... सहारा देती है। असीम शक्ति से परिपूर्ण है वह गालब की गुरूदक्षिणा के लिए अस्वमेधी घोड़ों का संग्रह स्वयं के समर्पित कर–कर के भी करती है। अयोध्या के महाराज हर्यश्य एवं काशी नरेश दिवादास को पुत्र–लाभ भी करती है।

नारी जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि वह पुरूष के लिए मात्र भोग्या रही है। अच्छी पत्नी में क्या गुण होने चाहिए, उसके बारे में तो बहुत लिखा गया, चर्चायें हुईं लेकिन एक अच्छे पति में क्या गुण होने चाहिए, उसके पन्ने कोरे ही हैं। शास्त्र भी यही मानकर चलता है कि पुरूष होना ही उसका सबसे बड़ा गुण है और स्त्री होना अपने आप में पाप। इसी कुंठा में जीने वाली स्त्री और उसे कुंठित करने वाला यह पुरूष समाज उसे एक साधन मात्र से ज्यादा कुछ नहीं समझता। 'माधवी' इस कुंठा में नहीं जीती। वह भोग्या बनने से इन्कार करती है, तभी तो अपने प्रेम, अपने समर्पण, अपने मातृत्व के साथ बिना किसी पुरूष सम्बल के एकाकी जीवन व्यतीत करने का मार्ग चुनती है। पुरूष का साथ स्त्री को सम्पूर्ण करता है परंतु यदि यह साथ मात्र एक भ्रम या छलावा या स्वार्थ के कारण है तो भीष्म साहनी की माधवी ऐसे मिथ्या साथ के प्रपंच को अस्वीकार कर अकेली रहना पसंद करती है जहाँ उसका 'स्व', उसका स्वाभिमान उसके साथ है। भीष्म साहनी ने यह दर्शाया है कि स्त्री अपने एकाकीपन में अन्दर से और अधिक सबल होती है। स्त्री जीवन–संघर्ष में सोने की तरह जलकर कुन्दन सदृश्य निखरती है और उसे अपने भीतर की इस असीम शक्ति का भान भी है। जब गालब दायित्व निर्वाह की बात करता है और उसकी दुर्बलता के बारे में कहता है तो वह उसे वास्तविकता का अहसास करा देती है। वह कहती है –

'माधवी' – तुम सदा दायित्व की बात करते रहते हो गालब! तुम
यही कहना चाहते हो कि मैं कर्तव्यपरायण नहीं हूँ।
(गालब चुप रहता है।)
एक कर्तव्य मेरे पिता का, एक कर्तव्य मुनिकुमार गालब
का दोनों के कर्तव्य मेरे माध्यम से पूरे हो रहे हैं।
फिर भी मैं दुर्बल हूँ, कर्तव्यपरायण वही हैं पिता ने
मुझे सौंपकर अपना कर्तव्य निभा दिया, और मुनिकुमार
ने घोड़े बटोरकर अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। एक दानवीर बन गया, दूसरा
आदर्श शिष्या और माधवी?मोह की मारी माधवी कर्तव्य से गिर गयी। वह
किसी बड़े काम का दायित्व वहन नहीं कर सकती, यही ना?
(गालब चुप रहता है। मुस्कुराती है–)
यदि यह दुर्बल नारी बीच में से निकल जाये, तो क्या होगा?

माधवी का यह सवाल ही यह दिखा देता है कि वह कितनी जागृत विचारों की नारी है। पुरूष के जीवन में

सहयोगिनी उसके लक्ष्य प्राप्ति में 'निमित्त' बनने वाली नारी जानती है कि पुरूष हमेशा ही नारी से बड़े–बड़े कार्य करवाता है और फिर भी वह उसे ही दुर्बल साबित करता है। देखा जाए तो भीष्म साहनी ने माधवी के माध्यम से स्त्री में निहित शक्ति, धैर्य, साहस, समर्पण का परिचय दिया है। माधवी एक माध्यम बन जाती है हर स्त्री के लिए स्वयं के शोध का। आत्मशोध किए बिना स्त्री सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं पा सकती, स्वयं को स्वयं की नजरों से देखने की भी आवश्यकता और आदत होनी चाहिए क्योंकि पुरूष दृष्टि से ही आज तक स्त्री स्वयं को देखती, नापती, आँकती अयी है। जरूरी है कि स्त्री–चरित्र, स्त्री–नैतिकता के मापदंड का 'स्केल' पुरूष निर्मित सदा ना हो जिससे मापदंड में निष्पक्षता हो। 'माधवी' में साहनी जी ययाति, गालब के साथ–साथ गुरू विश्वामित्र पर भी एक प्रश्न छोड़ते हैं कि क्या पुरूष के लिए कोई नैतिकता नहीं होती?यह जानते हुए भी कि अश्वमेधी घोड़ों का प्रबंध सम्भव नहीं.... गुरू विश्वमित्र गुरदक्षिणा में यह माँग करते हैं निश्चित रूप से इसके पीछे उनकी मंशा भी 'माधवी' को पाने, भोगने, एवं चक्रवर्ती राजा के पिता बनने की ही थी।

भीष्म साहनी ने स्पष्ट किया है कि जागना तो स्त्री को स्वयं ही होगा अन्यथा अन्यथा उसकी चीखें ही सुनाई देती रहेगी। समाज स्त्री को चीखने का अधिकार देता है लेकिन निर्णय का अधिकार नहीं। लेकिन 'माधवी' अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेती है जो उसकी जागृति का ही प्रतीक है।

'माधवी' के अतिरिक्त भीष्म साहनी के स्त्री विमर्श को उनकी दो कहानियाँ 'सरदारनी' एवं 'चीफ की दावत' में भी देखा जा सकता है। 'माधवी' में जहाँ महाभारतकालीन युवती के माध्यम से पौराणिक युग में स्त्री की दिशा एवं दशा पर उन्होंने विचार किया, वहीं 'सरदारनी' में एवं 'चीफ की दावत' में क्रमशः एक प्रौढ़ एवं वृद्ध स्त्री जो आधुनिक युग की है, को उन्होंने विमर्श के केन्द्र में रखा है। वास्तव में साहनी जी यह बताना चाहते हैं कि स्त्री हर युग में, हर उम्र में, हर समाज में 'वस्तु' एवं 'निमित्त' मात्र ही बनी रही। पौराणिक से आधुनिक युग में हमने कदम रखना, ज्ञान–विज्ञान उन्नति–प्रगति की बातें करते रहे, लेकिन बदलते युग के साथ कुछ नहीं बदला तो वह है स्त्री के प्रति पुरूष प्रधान समाज की सोच, संकीर्णता एवं स्वार्थपरता से भरी सोच। युवती माधवी भी वस्तु सदृश्य दान में दे दी जाती है, पिता के द्वारा एवं 'चीफ की दावत' में शामनाथ भी माँ को 'घर का फालतू सामान' समझकर उसे कहीं छिपाने की कोशिश करता है।

स्त्री का संघर्ष वस्तु से परे स्वयं को एक मानव के रूप में प्रतिष्ठित करने का है। माधवी प्रेमी के प्रेम में अपना सर्वस्व न्यौछावर करती है और शामनाथ की माँ अपने पुत्र के सुख, उन्नति एवं निर्माण के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन त्याग करती हैं यहाँ तक की वृद्धा होने पर आँखों से दिखाई ना देने पर भी बेटे की तरक्की के लिए फूलकारी बनाना चाहती है। यही है स्त्री.. स्वयं को मिटाकर पुरूष का निर्माण करने वाली। भीष्म साहनी ने यह बताना चाहा है कि इतनी त्याग, प्रेम से भरी स्त्री कमजोर नहीं होती, बस आवश्यकता है उसे स्वयं के भीतर छिपी शक्ति एवं साहस को समझने की। स्त्री कमजोर है, दुर्बल है, बिना किसी पुरूष तरू के सम्बल के एक क्षीण लतिका है। यह कह–कहकर स्त्री को मानसिक रूप से तोड़ने की कोशिश की जाती रही है। स्वयं के भीतर मौजूद शक्ति, समार्थ्य, साह, आस्था से यदि स्त्री का साक्षात्कार हो गया, स्वयं के भरोसे पर जीने की आदत पड़ गई तो पुरूष का क्या होगा?यही कारण है कि स्त्री को अपने अन्तर्निहित शक्ति से अपरिचित रखने की साजिश हर युग में की गई है लेकिन भीष्म साहनी एक सजग, चेतनशील, युद्रष्टा एवं युगस्रष्टा कलाकार के रूप में अपना सृजनात्मक उत्तरदायित्व निभाते हुए स्त्री को स्वयं से साक्षात्कार करवाते हैं।

अपनी कहानी 'सरदारनी' में, जिसमें एक प्रौढ़ स्त्री साम्प्रदायिक दंगे की विभीषिक में साहसिकता के साथ मानव–धर्म का निर्वाह करती हुई मुस्लिम, मास्टर को अपने कृपाण के बल पर वास्तव में अपने साहस, मनुष्यता एवं आत्मआस्था के बल पर बचताती है। पूरी भीड़ को चीरती सरदारनी के पास सिर्फ उसकी आन्तरिक शक्ति एवं विश्वास है जो उसे लड़ने की, एकाकी रहने और संघर्ष करने की ताकत देता है। भीष्म साहनी ने यह बताना चाहा है कि हर स्त्री में 'सरदारनी' सदृश्य असीम साहस है, बस आवश्यकता है उस साहस से स्वयं को परिचित करवाने की। एक और महत्वपूर्ण बात जो साहनी जी हमारे समक्ष रखना चाहते हैं वो यह है .... स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री–अस्तित्व एवं स्त्री मुक्ति का मतलब–अपने भीतर की स्त्री, अपनी कोमलता, अपनी शालीनता, प्रेम स्त्री सुलभ लज्जा भाव का परित्याग नहीं है, स्त्रीत्व का त्याग कर पुरूष बन जाना स्त्री नहीं है तभी तो 'शेरनी सदृश्य दहाड़नेवाली सरदारनी कहानी के अंत में साहनी जी दिखाते हैं कि वो दरवाजे के पीछे ही रहती और लोगों से कहती है कि अभी उसके पति घर पर नहीं हैं वे लोग बाद में आयें। स्पष्ट है स्त्री के भीतर की मर्यादा, शालीनता, कोमलता, सादगी लज्जा, भाव उसका श्रृंगार है, उसकी विशिष्टता है, लेकिन हर समय श्रृंगार का रूप एक जैसा नहीं होना चाहिए। आवश्यकता अनुसार, परिस्थिति अनुसार उसमें परिवर्तन होना चाहिए। तभी स्त्री सम्पूर्ण हो सकती है। आगे बढ़ सकती है, अपनी जमीन, अपना आकाश गढ़ सकती है। वास्तव में स्त्री विमर्श बहस का विषय उतना नहीं है, जितना जागृति का और भीष्म साहनी की रचनाओं में जागृति स्पष्ट है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा था – 'जब विधाता पुरूष का निर्माण कर रहा था तब वह एक स्कूल मास्टर था, किन्तु जब नारी निर्माण के लिए उद्दत हुआ तो वह सहसा एक कलाकार हो गया और उसके हाथ में केवल रंग और तूलिका थी।'

आवश्यकता है इस रंग और तूलिका को समझने की।

स्वाधीनता आंदोलन के परिपेक्ष्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि

मनीष तोमर

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वाधीनता आंदोलन के युग के लेखक थे। वे स्वाधीनता आंदेलन की उथल–पुथल से भरे उस दौर के लेखक थे जिस दौर में राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय पटल पर बंग–भंग से लेकर, प्रथम विश्वयुद्ध, सोवियत समाजवादी क्रांति, जलियांवाला बाग जैसी घटनाएँ घट रही थीं और बहिष्कार, स्वदेशी, स्वराज, असहयोग, अहिंसात्मक और क्रांतिकारी हिंसा के रूप में अनेक राजनीतिक आंदोलन चल रहे थे। आचार्य शुक्ल की साहित्यिक चिन्ताओं का जन्म राष्ट्रीय आंदोलन के इसी उथल–पुथल के बीच हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन की जरूरतों से प्रेरित होकर उन्होंने गम्भीर साहित्यिक–वैचारिक लेखन किया। इस आंदोलन ने साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में जो–जो प्रश्न खड़े किये, वे सभी उनके लेखन के केन्द्र में रहे। उस समय स्वाधीनता आंदोलन में राष्ट्रीय अस्मिता का प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण बना हुआ था। हमारी संस्कृति, साहित्य, राष्ट्र का विकास किस दिशा में होना चाहिए? परंपरा की दिशा में या आधुनिकता की? हम किसके आधार पर ज्यादा शक्तिशाली बनेंगे?– इस तरह के तमाम प्रश्न प्रबुद्ध मस्तिष्कों के लिए प्राथमिक महत्व रखते थे।

स्वाधीनता आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने फरवरी 1907 के 'हिन्दुस्तान रिव्यू', इलहाबाद में 'व्हाट हैज इण्डिया टू डू?' शीर्षक से एक लेख लिखा था। इस लेख में उन्होंने जो कुछ लिखा, वह स्वाधीनता आंदोलन सम्बन्धी उनके विचारों को जानने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह लेख आचार्य शुक्ल ने बंग–भंग विरोधी आंदोलन के बाद लिखा था जिसकी देन 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' जैसे आंदोलन थे। इसके आरम्भ में ही उन्होंने कहा था कि "हमें एक साथ ऐसे लोगों की जरूरत है, जो सामाजिक सुधारक, राजनीतिक आंदोलनकर्ता, कवि और शिक्षाविद हों।" इसमें ध्यान देने की बात यह है कि शुक्ल जी 'राजनीतिक आंदोलनकर्ता' और 'कवि' दोनों को एक ही संदर्भ में याद करते हैं, जो उनके दृष्टिकोण में आंदोलन के साथ साहित्य के सम्बन्ध को स्पष्ट परिलक्षित करता है। लेख में शुक्ल जी सामाजिक बुराइयों के निष्क्रमण और नयी शिक्षा के प्रचार पर जोर देते हैं, ताकि लोगों में उच्च दायित्वबोध को पैदा किया जा सके– "ऐसी शिक्षा, जो दूसरी बातों के अतिरिक्त एक उच्च उत्तरदायित्व के भाव से किसी को युक्त कर देती है और उसकी महत्वाकांक्षाओं के लिए ऐसे क्षेत्र प्रदान करती है, जो सलाम बजाने या माल गुजारी इकट्ठा करने के काम से बड़े होते हैं।" शिक्षा का वे यह अर्थ भी बताते हैं कि उसके माध्यम से अशिक्षित जनता तक सामान्य महत्व के विषयों पर व्यक्त की गयी नेताओं की राय पहुँचायी जाय, जिससे कि समय आने पर उसके अज्ञान के कारण उनके सहयोग से वंचित न होना पड़े। इसी संदर्भ में आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि "प्रत्येक ग्रामवासी को यह जानना चाहिए कि अधिक काम करने के बाद भी उसे कम क्यों मिलता है, प्रत्येक नागरिक

को यह बताया जाना चाहिए कि उसकी सेवाओं की माँग कम क्यों है और वास्तव में प्रत्येक भारतवासी को यह साफ–साफ पता होना चाहिए कि दिन प्रतिदिन उसका देश गरीब क्यों होता जा रहा है! यदि आप चाहें तो इसे राजनीतिक शिक्षा कह सकते हैं। इस प्रकार की शिक्षा देने के लिए हमें विभिन्न तरीके और साधन अपनाने होंगे। स्कूल और कॉलिज ही इस शिक्षा के स्थान नहीं होने चाहिए। सार्वजनिक व्याख्यानों के द्वारा हम बहुत कुछ कर सकते हैं। सुविधाजनक स्थानों पर ऐसे व्याख्यानों का आयोजन किया जाना चाहिए और लोगों को सुदूर देहातों में जाकर भारतीय जनसमूह को उन परिस्थितियों से परिचित कराना चाहिए, जो उन्हें प्रभावित कर रही हैं। यहाँ उन्हें इसके साथ ही कर्म का मार्ग भी बताना चाहिए।''

ज्यादातर राजनीतिक आंदोलनों के मूल में आर्थिक कारण होते हैं। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के साथ भी यही बात थी। आचार्य शुक्ल की दृष्टि चूँकि भारतीय जनता की आर्थिक स्थिति पर थी, इसलिए उन्होनें ब्रिटिश शासन के साम्राज्यवादी चरित्र को आसानी से पहचान लिया। वे लिखते हैं कि '' जहाँ तक हम देख पाये हैं, साम्राज्यवाद ही भारत में ब्रिटिश राष्ट्र की नीति की प्रेरक शक्ति रहा है।'' उन्हें बंगाल के स्वदेशी आंदोलन में राष्ट्र की आर्थिक प्रगति का मार्ग दिखायी पड़ा। उन्होंने अंग्रेजों का भरोसा न कर भारतीय जनता को भुखमरी और बेकारी से बचाने के लिए अपनी औद्योगिक इकाई लगाने की आवश्यकता पर बल दिया और स्पष्ट कर दिया कि '' इस घड़ी में जो हमारे साथ है, वे मित्र हैं जो हमसे अलग है, वे उदासीन हैं और जो हमारा विरोध करते हैं, वे शत्रु हैं।''

आगे चलकर आचार्य शुक्ल ने साम्राज्यवाद के असली रूप को प्रथम विश्व–युद्ध के दौरान पहचाना। फरवरी 1919 में 'लोभ या प्रेम' शीर्षक से प्रकाशित अपने निबन्ध में शुक्ल जी लिखते हैं कि ''कोई–कोई देश लोभवश इतना अधिक माल तैयार करते हैं कि उसे किसी देश के गले मढ़ने की फिक्र में दिन रात मरते रहते हैं। जब तक यह व्यापारोन्माद दूर ना होगा तब तक इस पृथ्वी पर सुख–शान्ति न होगी।'' साम्राज्यवाद के औपनिवेशिक शोषण के प्रति शुक्ल जी की समझ उनके इस कथन से और भी स्पष्ट होती है, ''योरप के देश इस धुन में लगे कि व्यापार के बहाने दूसरे देशों से जहाँ तक धन खींचा जा सके बराबर खींचा जाता रहे। पुरानी चढ़ाइयों की लूटपाट का सिलसिला आक्रमण काल तक ही–जो बहुत दीर्घ नहीं हुआ करता था–रहता था। पर योरप के अर्थोन्मादियों ने ऐसी गूढ़, जटिल और स्थायी प्रणालियाँ प्रतिष्ठित कीं जिसके द्वारा भूमण्डल की न जाने कितनी जनता का क्रम–क्रम से रक्त चुसता चला जा रहा है, न जाने कितने देश चलते फिरते कंकालों के कारागार हो रहे हैं।''

देश भक्ति आचार्य शुक्ल के सम्पूर्ण साहित्य के मूल में है। यही उनके साहित्य सृजन का प्रेरक तत्व है। सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के मूल्यांकन के लिए, और विशेष रूप से आधुनिक हिन्दी साहित्य के मूल्यांकन के लिए उन्होनें बुनियादी प्रतिमान के रूप में जिस दृष्टिकोण का इस्तेमाल किया, वह है उनकी राष्ट्रीय चेतना से संपन्न दृष्टि, जो देश की राजनीति और राजनीतिक आंदोलनों का प्रतिफल है। उनके साहित्य सृजन और विवेचन में राजनीतिक आंदोलनों की जो भूमिका रही, वह उनके 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आधुनिक काल के रचनाकारों पर की जाने वाली टिप्पणियों से स्पष्ट परिलक्षित होती है। वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हों या बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', मैथलीशरण गुप्त हों या रामनरेश त्रिपाठी, या फिर माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन और दिनकर, उन्होंने सभी के साहित्य पर इस दृष्टि से विचार किया है कि उनकी राजनीतिक चेतना कैसी

थी और राजनीतिक आंदोलनों से उनका कैसा सम्बन्ध था। प्रेमघन के बारे में वे लिखते हैं कि ''देश की राजनीतिक परिस्थितियों पर इनकी नजर बराबर बनी रहती थी। देश की दशा सुधारने के लिए जो राजनीतिक या धर्म सम्बन्धी आंदोलन चलते रहे, उन्हें ये बड़ी उत्कण्ठा से परखा करते थे। जब कहीं कुछ सफलता दिखायी पड़ती, तब लेखों और कविताओं द्वारा हर्ष प्रकट करतेय और जब बुरे लक्षण दिखायी देते, तब क्षोभ और खिन्नता। कांग्रेस के अधिवेशनों में प्रायः जाते थे।'' इसी प्रकार मैथलीशरण गुप्त के बारे में सूचित किया है कि ''इधर के राजनीतिक आंदोलनों ने जो रूप धारण किया उसका पूरा आभास (इनकी) पिछली रचनाओं में मिलता है।'' इस सम्बन्ध में उनका यह कथन उल्लेखनीय है कि ''शासन की अव्यवस्था और अशान्ति के उपरान्त अंग्रेजों के शान्तिमय और रक्षा पूर्ण शासन के प्रति कृतज्ञता का भाव भारतेन्दु काल में बना हुआ था। इससे उस समय की देश–भक्ति सम्बन्धी कविताओं में राजभक्ति का स्वर भी प्रायः मिला पाया जाता है। देश की दुख–दशा का प्रधान कारण राजनीतिक समझते हुए भी उस दुख–दशा से उद्धार के लिए कवि लोग दयामय भगवान को ही पुकारते मिलते हैं। कहीं कहीं उद्योग धन्धों को न बढ़ाने, आलस्य में पड़े रहने और देश की बनी वस्तुओं का व्यवहार न करने के लिए वे देशवासियों को भी कोसते पाये जाते हैं। सरकार पर रोष या असन्तोष की व्यंजना उनमे नहीं मिलती। कांग्रेस की प्रतिष्ठा होने के उपरान्त भी बहुत दिनों तक देश भक्ति की वाणी में विशेष बल और वेग न दिखायी पड़ा। बात यह थी कि राजनीति की लम्बी चौड़ी चर्चा भर साल में एक बार धूम धाम के साथ थोड़े से शिक्षित बड़े आदमियों के बीच हो जाया करती थी, जिसका कोई स्थायी और क्रियोत्पादक प्रभाव नहीं देखने में आता था। अतः द्विवेदी काल की देश भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में शासन पद्धति के प्रति असन्तोष तो व्यंजित होता था, पर कर्म में तत्पर करने वाला, आत्मत्याग करने वाला जोश और उत्साह न था। आंदोलन भी कड़ी याचना के आगे नहीं बढ़े थे।'' इसी सम्बन्ध में वे आगे लिखते हैं कि ''तृतीय उत्थान में आकर परिस्थिति बहुत बदल गयी। आंदोलनों ने सक्रिय रूप धारण किया और गाँव–गाँव राजनीति और आर्थिक परतन्त्रता के विरोध की भावना जगायी गयी। सरकार से कुछ माँगने के स्थान पर अब कवियों की वाणी देशवासियों को ही 'स्वतन्त्रता देवी की वेदी पर बलिदान' होने को प्रोत्साहित करने में लगी। अब जो आंदोलन चले वे सामान्य जनसमुदाय को भी साथ लेकर चले। इससे उनके भीतर अधिक आवेश और बल का संचार हुआ।'' आचार्य शुक्ल के इन कथनों से साफ साफ अनुमान लगाया जा सकता है कि वे भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी कविता के पारस्परिक गहरे सम्बन्धों को कितनी बारीकी से निरूपित कर रहे थे। जहाँ भारतेन्दु युग में शासन के प्रति कृतज्ञता का भाव बना हुआ था इसीलिए कविता में सरकार के प्रति रोष या असन्तोष का भाव नहीं व्यक्त किया गया! द्विवेदी युग में भी कविता में शासन के प्रति असन्तोष तो व्यक्त हुआ, पर उसमें कर्म और त्याग के लिए तत्पर कराने वाला उत्साह न दिखायी पड़ा! द्विवेदी युग के बाद स्वाधीनता–आंदोलन किसानों तक फैला, जिससे कवियों की वाणी बलिदान की प्रेरणा देने लगी!

हालांकि इस पूरे विवेचन में शुक्ल जी के दृष्टिकोण में एक समस्या दिखायी देती है। वह यह कि तृतीय उत्थान के जिन कवियों की वाणी में राजनीति से लेकर सामाजिक आंदोलनों तक की प्रतिध्वनि आचार्य शुक्ल को सुनायी पड़ती है वे कवि दिनकर, नवीन और माखनलाल चतुर्वेदी हैं। शुक्ल जी को प्रसाद और निराला जैसे कवियों का स्वाधीनता आंदोलन से कोई विशिष्ट सम्बन्ध न दिखायी पड़ा। उनके काव्य में उग्रता भरे उस दौर की प्रतिध्वनि न सुनायी पड़ी। अगर पंत में उन्हें यह सुनाई भी पड़ा तो कविता के धरातल पर उन्हें संतोष न दे सका। यह छायावाद के प्रति शुक्ल जी की अवधारणा का ही परिणाम था कि वे यह नहीं पहचान सके कि इन कवियों में स्वाधीनता आंदोलन की प्रतिध्वनि और गहराई से सुनायी पड़ती थी।

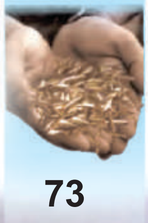

आचार्य शुक्ल के जीवनीकार चन्द्रशेखर शुक्ल लिखते हैं ''शुक्ल जी राजनीति में उग्र विचार रखते थे। उन्हें तिलक की नीति पसन्द थी।... गोखले की विद्याबुद्धि और त्याग की वे प्रशंसा करते थे और सर तेजबहादुर सप्रू, सी.वाई.चिन्तामणि और वी.श्रीनिवास शास्त्री से प्रभावित थे, पर उनकी नीति से उन्हें सन्तोष न था।'' बंग–भंग विरोधी आंदोलन के साथ भारतीय स्वाधीनता आंदोलन सक्रियता के नए दौर में प्रवेश करता है और आचार्य शुक्ल की राजनीतिक चेतना बंग–भंग विरोधी और स्वदेशी एंव बहिष्कार आंदोलनों से ही परिपक्व हुई। शुक्ल जी स्वदेशी आंदोलन में अग्रणी भूमिका तिलक की ही मानते थे। शुक्ल जी पर तिलक के कर्म योग का गहरा प्रभाव था। कर्म और कर्म–सौन्दर्य आचार्य शुक्ल के लिए ऐसा प्रतिमान रहा है जिस पर उन्होनें हमेशा कवियों और काव्य–धाराओं को परखा। काव्य क्या कर सकता है इसके सम्बन्ध में उनका मानना था कि ''शुद्ध ज्ञान या विवेक मंन कर्म की उत्तेजना नहीं होती। कर्म के लिए मन में कुछ वेग का आना आवश्यक है।'' अपने 'श्रद्धा–भक्ति' शीर्षक निबन्ध में शुक्ल जी लिखते है– ''संसार से तटस्थ रहकर शान्ति–सुखपूर्वक लोकव्यवहार सम्बन्धी उपदेश देनेवालों का उतना महत्व हिन्दू धर्म में नहीं है, जितना संसार के भीतर घुसकर उसके व्यवहारों के बीच सात्विक विभूति की ज्योति जगाने वालों का है। हमारे यहाँ उपदेशक ईश्वर के अवतार नहीं माने गए हैं। अपने जीवन द्वारा कर्म–सौंदर्य संघटित करने वाले ही अवतार कहे गये हैं। कर्म–सौंदर्य के योग से उनके स्वरूप में इतना माधुर्य आ गया है कि हमारा हृदय अपने आप उनकी ओर खिंचा पड़ता है।'' आचार्य शुक्ल का कर्मवाद उन्हे तोलस्तोय के 'निष्क्रिय प्रतिरोध' ही नहीं, महात्मा गाँधी के 'सत्याग्रह' के विरोध तक ले गया। हिन्दी साहित्य का इतिहास में उन्होनें कहा है कि ''साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध तोलस्तोय की धर्मबुद्धि जगाने वाली वाणी का 'भारतीय अनुवाद' महात्मा गाँधी ने किया।''

सितम्बर 1920 में कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ था, जिसमें महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव को स्वीकृत कराया। 1921 में बाँकीपुर, पटना से प्रकाशित होने वाले समाचारपत्र 'एक्सप्रेस' में आचार्य शुक्ल ने कई किस्तों में 'नन–कोऑपरेशन एण्ड नन–मर्केन्टाइल क्लासेज' शीर्षक से एक लेख लिखकर असहयोग–आंदोलन की कड़ी आलोचना की। 'दस्तावेज' (गोरखपुर) के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–विशेषांक (अक्टूबर 83, जनवरी 84) में उसका एक अंश अनुदित रूप में 'असहयोग और अव्यापारिक श्रेणियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस लेख में आचार्य शुक्ल ने असहयोग आंदोलन को एक अनिश्चित योजना, सतही विद्रोह और कोलाहल मात्र बताया। इस आंदोलन के बारे में शुक्ल जी का मानना था कि 'बिना सोचे विचारे लोग इसकी ओर दौड़ पड़े।' इतना ही नहीं गाँधी के नेतृत्व पर भी शुक्ल जी ताज्जुब जताते हुए कहते हैं कि''लोगों की गाँधी के प्रति आस्था क्यों है, सत्याग्रह आंदोलन की नियति देखकर मि. गाँधी की प्रणाली के प्रति विश्वास डिग जाना चाहिए था।'' गाँधी के प्रति इस अंधभक्ति को देखकर शुक्ल जी का कहना था ''क्योंकि व्यक्तित्वों के प्रति रहस्यवादी भक्ति भारतीय जन–समूह की चारित्रिक विशेषता है।'' गाँधी के नेतृत्व को लेकर शुक्ल जी का यह भी मानना था कि ''लोकमान्य तिलक की मृत्यु ने राष्ट्रवादियों के पूरे दल को मि. गाँधी की अनुकम्पा पर छोड़ दिया था।'' जब भारतीय जनता अंग्रेजी राज के दमन और अत्याचार के कुचक्र से क्षुब्ध थी, खिलाफत का सवाल मुसलमानों को खौला रहा था और जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड राष्ट्रीय अपमान का प्रतीक बन गया था, तब समूची भारतीय जनता अंग्रेजी सरकार के प्रति संघर्ष करना चाहती थी। ऐसी परिस्थितियों में शुक्ल जी का तिलक के 'होमरूल' की नीतियों में आस्था और असहयोग का विरोध सही नहीं जान पड़ता। इस सम्बन्ध में शुक्ल जी का कथन है, ''असहयोग आंदोलन के ऐसे लक्ष्यहीन और असन्तुलित चरित्र का पर्दाफाश करने तथा इसकी

पताका के नीचे छद्‌मवेश में छिपी हुई दुष्ट शक्तियों का पर्दाफाश करने के लिए जनता के समक्ष स्पष्ट और सुनिश्चित स्वराज्य (होमरूल) विकल्प के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।''

असहयोग का विरोध करने वाले शुक्ल जी अकेले न थे। एनी बेसेन्ट, मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, विपिन चन्द्रपाल सरीखे कांग्रेस के कई दिग्गज नेताओं ने गाँधी के असहयोग प्रस्ताव का पुरजोर विरोध किया। सभी ने इस प्रस्ताव को एक सिरे से ना केवल खारिज किया बल्कि इस प्रस्ताव को अव्यवहारिक, अनिश्चित, मूर्खतापूर्ण, गैरकानूनी और खतरनाक बताया। इनके समर्थन में शुक्ल जी लिखते है कि –''कलकत्ता के विशेष कांग्रेस अधिवेशन में वयोवृद्ध एंव सम्मानित नेता केवल नगण्य ही नहीं हुए अपितु गाँधी के अनुयायियों द्वारा ये खुलेआम अपमानित किये गये।'' लेकिन जनता ने सारे विरोध के बावजूद इस प्रस्ताव को पास किया।

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के हर विकास को ध्यान से देख रहे 'लेनिन' ने भी असहयोग आंदोलन को उठता देखकर 1921 में लिखा– ''एशियाई देशों की जनता विश्व राजनीति और साम्राज्यवाद के क्रांतिकारी विध्वंस की एक महत्वपूर्ण शक्ति बनती जा रही है। ऐसे देशों में भारत सबसे आगे है जहाँ क्रांति की ओर बढ़ने की तीव्रता दिखायी दे रही है।'' गाँधी के विषय में उन्होंने कहा कि "भारतीय जनता को प्रेरित करने और उसे नेतृत्व प्रदान करने के लिहाज से वे क्रांतिकारी हैं।'' जबकि दूसरी ओर आचार्य शुक्ल ने लिखा कि ''इसके बहुत से विचारशील नेता जिनमें महाराष्ट्रीय लोग भी सम्मिलित हैं, अपनी पीठ पर तमाम सामाजिक एंव आर्थिक विचारधाराओं की गठरी लादे हुए कांग्रेस की प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए चुपचाप असहयोगियों की कतार में शामिल हो गये।'' प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बदलती वैश्विक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि पर ब्रिटिश सरकार द्वारा लागू किये गये काले कानूनों और दमन से क्षुब्ध मध्यवर्ग, खिलाफत से बेचौन मुसलमान, महँगाई के मारे मजदूर, सामन्ती जुल्म और अँग्रेजी राज के छल से क्रोधित किसान ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष के लिए तैयार खड़े थे। इसी संघर्ष का मसौदा लेकर सही समय पर गाँधी आगे आये। शायद राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय परिघटनाओं और संघर्ष की माँग की परिस्थितियों में शुक्ल जी ठीक से तादात्म्य नहीं बैठा पा रहे थे और आंदोलन के नेतृत्व का राज व्यक्तित्व की सफलता में तलाश रहे थे जबकि असहयोग आंदोलन गाँधी के व्यक्तित्व की सफलता नहीं, परिस्थितियों का तकाजा था।

असहयोग आंदोलन के सम्बन्ध में शुक्ल जी का मानना था कि यह आंदोलन वस्तुतः व्यापारी वर्ग के हित में है तथा आंदोलन का कार्यक्रम भावनात्मक अधिक है, ठोस और व्यावहारिक कम। आचार्य शुक्ल का मानना था कि जिस व्यापारिक और पूँजीपति वर्ग ने असहयोग आंदोलन में सबसे ज्यादा उत्साह दिखाया और गाँधी का समर्थन किया, यह वही वर्ग था जो अभी तक अँग्रेजी राज के संरक्षण और सुविधाओं में पलकर मोटा होता रहा। शुक्ल जी की नजरों में चूंकि यह आंदोलन मुख्यतः व्यापारी वर्ग का था और इस आंदोलन के जरिए व्यापारी वर्ग कृषक वर्ग को अपने प्रभाव के मातहत लाना चाहता था, इसलिए उन्होनें देहातों में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रसार के प्रयत्न को व्यापारी वर्ग के, असहयोग आंदोलन में उत्साह के रूप में देखा। असहयोग आंदोलन के असन्तुलित चरित्र को दिखाते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि ''इस आंदोलन में व्यापारीवर्ग को कोई त्याग नहीं करना पड़ा सारा त्याग मध्यवर्ग के मत्थे डाल दिया गया है।'' इस लेख में गैर व्यापारिक वर्गों के पक्ष से असहयोग आंदोलन की खामियों और अव्यवहारिकता पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी सवाल उठाते हैं कि ''इस आंदोलन में त्याग और बलिदान किनसे माँगा जा रहा है। जाहिर है

छात्रों से शिक्षा संस्थाएं छोड़ने के लिए कहा जा रहा है, नौकरी पेशा वर्ग से त्यागपत्र देने के लिए और किसानों को राजस्व भुगतान न कर, जमीन नीलामी का खतरा उठाने के लिए। लेकिन गाँधी की छत्र–छाया में आंदोलन का नेता बने हुए व्यापारी वर्ग से क्या बलिदान माँगा जा रहा है?'' इस स्थिति का अवलोकन करने के बाद शुक्ल जी व्यापारी वर्ग की उन्नति और असहयोग आंदोलन द्वारा उसकी पक्षधरता के सम्बन्ध में लिखते हैं– ''पश्चिम के राष्ट्र अपने को जिससे मुक्त करने की चेष्टा कर रहे हैं उसी पूँजीवाद की ओर यह एक बढ़ता कदम है। वह पूँजी बटोरने और समाज में व्यक्तिवादी जीवन मूल्यों के क्षुद्र अमरीकी मानदण्ड स्थापित करने का प्रयास भर है।'' कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल सामन्ती संस्कृति की कुरूपताओं से ग्रस्त इस पराधीन देश में स्वाधीनता आंदोलन के विभिन्न पहलुओं की बारीकियों और तत्कालीन जरूरतों को पहचानने से ज्यादा ध्यान पूँजीवाद की कुरूपताओं पर देने लगते हैं जो अन्ततः भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के लिए समस्याप्रद हो जाता है।

अपने लेख की शुरुआत शुक्ल जी अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज व्यवस्था के वर्णन से करते हैं। शुक्ल जी के मुताबिक अंग्रेजों के आगमन से पहले के भारतीय समाज में मुख्यतः दो विभाजन थे, व्यापारिक और अव्यापारिक। अव्यापारिक वर्गों में कृषि और राजकीय सेवाओं से जुड़े लोग थे। हर वर्ग या समुदाय के काम और अधिकार के अपने क्षेत्र थे, जिनमें वे सन्तुष्ट थे। व्यापारी कृषि या राजकीय क्षेत्र में नहीं घुसते थे, कृषि या राजकीय सेवाओं से जुड़े लोग व्यापार नहीं करते थे। शुक्ल जी के ही शब्दों में ''इस प्रकार समाज में पूरा सन्तुलन रखा गया।'' यह सामंजस्यपूर्ण सामन्ती समाज अंग्रेजों के आने से टूट गया– ''ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रूप में यूरोप के घृणित व्यापारवाद ने भारत में कदम रखा और समाज के द्विस्तरीय विभाजन के आधार पर जो सामंजस्य इतने दिनों से चला आ रहा था उसे अस्त–व्यस्त कर दिया।'' शुक्ल जी की यह धारणा विचारणीय है कि अंग्रेजों के पहले सामन्ती भारतीय समाज 'सन्तुलित' और 'सामंजस्यपूर्ण' समाज था। राष्ट्रीय आंदोलन के सन्दर्भ में शुक्ल जी का यह दृष्टिकोण उचित नहीं जान पड़ता। तत्कालिक समाज व्यवस्था का वर्णन करते समय शुक्ल जी सामन्ती शोषण के कई तत्वों को नजरअंदाज करते हैं, जिस पर तत्कालिक समाज व्यवस्था टिकी थी। इतना ही नहीं, व्यवस्था के वर्णन में शुक्ल जी सर्व–साधारण की घोर दरिद्रता और लगान के दलदल में फँसे रैयत के सवालों पर चुप रहे, क्योंकि अंग्रेजी राज के खिलाफ सामन्ती समाज को सन्तुलित और सामंजस्यपूर्ण कहना, लगान और रैयत पर सामन्ती शोषण के सवालों पर चुप रहकर ही सम्भव था।

शुक्ल जी की दूसरी धारणा यह है कि भारत में कम्पनी–राज और ब्रिटिश शासन का मुख्य आधार यहाँ का व्यापारी और पूँजीपति वर्ग रहा है– ''कम्पनी अपने व्यापारिक प्रचार–प्रसार के लिए बनियों पर आश्रित थी, इसलिए उसने केवल उन्हीं के अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न की।'' शुक्ल जी का यह भी मानना था कि ब्रिटिश सरकार ने सरकारी राजस्व नीति, भूमि सम्बन्धी जटिल कानूनी प्रक्रियाओं, लोभी वकीलों, बनियों, सरकारी कर्मचारियों के बल पर कृषक वर्गों (किसान और जमींदार) को तबाह कर दिया। इसका उल्लेख करते हुए शुक्ल जी लिखते हैं कि ''जमीन से जुड़े वर्ग जबकि प्रतिदिन इस प्रकार विनाश की ओर खींचे जा रहे थे, नगरों के बनिया आयात–निर्यात उद्योग द्वारा प्रचुरतम लाभ पैदा कर रहे थे।... जबकि एक वर्ग सरकार द्वारा अपने ऊपर लादी गयी असुविधाओं के मातहत श्रम कर रहा है, दूसरा वर्ग ब्रिटिश संरक्षण के सारे आशीर्वादों का पूरा आनन्द लेता हुआ उसका मजाक उड़ा रहा है।'' भारतीय पूँजीपति वर्ग को कम्पनी राज का मुख्य आधार मानने का शुक्ल जी का यह दृष्टिकोण उचित नहीं जान पड़ता। सर्वप्रथम तो शुक्ल जी

द्वारा किया जाने वाला श्रेणी विभाजन ही सही नहीं है कि वे किसान और जमींदार को एक 'कृषक वर्ग' कहते हैं और किसान से जमींदार तक (जिसमें राजकीय सेवाओं से जुड़े सरकारी कर्मचारियों को भी रखा गया है) को एक साथ रखकर 'अव्यापारिक श्रेणी' बनाते हैं। इस सम्बन्ध में यह जान लेना भी जरूरी है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आमदनी का मुख्य स्त्रोत भू–राजस्व था, जिसके लिए कम्पनी भू–स्वामियों पर आश्रित थी। कम्पनी राज में कम्पनी ने जमींदारों को जमीन का मालिकाना हक देकर और राजस्व वसूली के सभी अनैतिक अधिकारों से लैस कर किसानों पर थोप दिया था। यह जमींदार वर्ग ही था जो अपने बाहुबल के दम पर कम्पनी के दलाल के रूप में रैयत पर अत्याचार कर लगान वसूलता था जिसका आधा हिस्सा इस सामन्त वर्ग को भी प्राप्त होता था। इस प्रकार कम्पनी सरकार ने अपनी जरूरतों के मुताबिक नये अधिकारों से लैस एक ऐसा सामन्ती वर्ग खड़ा किया, जो पहले से भी अधिक क्रूर और बर्बर था। यह दलाल सामन्त वर्ग ही भारत में अंग्रेजी राज का मुख्य आधार था।

शुक्ल जी अपने विश्लेषण में व्यापारी वर्ग द्वारा जमींदारों की तबाही का तो वर्णन करते हैं किन्तु इसी जमींदार वर्ग के सामन्ती पक्ष को उजागर नहीं करते। उन्होनें इस सामन्ती वर्ग के चरित्र का तनिक भी उल्लेख नहीं किया, जिसके कारण किसान निलाम हुए और अंग्रेज सरकार द्वारा बेदखल किये गये। शुक्ल जी अपने विश्लेषण में जमींदारों की तबाही को तो इंगित करते हैं पर जमींदारों द्वारा रैयत पर किये जाने वाले शोषण–उत्पीड़न की कहानी नहीं कहते। सच तो यह है कि कम्पनी संरक्षित व्यापारी वर्ग जितना जमींदारों को बेदखल कर रहे थे, उससे कई गुना अधिक और अन्याय पूर्ण ढंग से ये सामन्त वर्ग आसामियों को बेदखल कर रहा था।

वास्तविकता तो यह है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक कम्पनी थी जिसने अपनी घृणित व्यापारवादी नीतियों से भारतीय व्यापार और उद्योग धंधों को चौपट कर दिया था। इतिहास में विदित है कि कम्पनी ने अपनी नाजायज, अव्यापारिक नीतियों के बल पर किस प्रकार भारतीय वस्त्र उद्योग और बुनकरों को उजाड़ दिया। भारत का बल पूर्वक विऔद्योगीकरण किया। अपने अनैतिक अत्याचारों के बल पर भारतीय शिल्प उद्योग को नष्ट कर व्यापारियों और कारीगरों को पूरी तरह से तबाह करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ी और कृषि पर बढ़ती निर्भरता के चलते भारत एक कृषि प्रधान देश बना दिया गया। इतिहासकार बिपिन चन्द्र के अनुसार–" व्यापार का कोई क्षेत्र न था जहाँ भारतीय व्यापारी प्रभुत्वशाली स्थिति में हो। हर जगह वे निचली सीढ़ियों पर थे। यहाँ तक कि हिन्दी प्रदेश में गल्ले के निर्यात–व्यापार में भी, जहाँ हिन्दुस्तानी आढ़तियों की संख्या ज्यादा थी, रॉनी ब्रदर्स जैसी अंग्रेज व्यापारिक कम्पनियाँ प्रभावशाली थीं। उद्योग में ऐसा कोई क्षेत्र न था जहाँ भारतीय पूँजी का पूरा नियन्त्रण और स्वामित्व हो। यहाँ तक कि वस्त्र उद्योग में भी, जिसे भारतीय पूँजी का गढ़ माना जाता था, आंशिक पूँजी विदेशी थी, प्रबन्ध अधिकांशतः विदेशी था और तकनीक का अधिकांश जबरन आयात करना पड़ता था।"

भारत में राष्ट्रीय आंदोलन की शुरूआत इसी माँग के साथ हुई थी कि भारत के शिल्प, व्यापार और उद्योग के रास्ते से रोड़े हटाये जायें, उन्हे बढ़ने का मौका दिया जाय। दादा भाई नौरोजी, रमेशचन्द दत्त, बी.जी.जोशी और जस्टिस रानाडे, सभी राष्ट्रवादी नेताओं ने अंग्रेजी राज की आलोचना करते हुए बहुत परिश्रम से जमा किए गये तथ्यों और आकड़ों से यह साबित करके दिखाया कि अंग्रेज राज ने भारतीय व्यापार और उद्योग को न सिर्फ तबाह किया, बल्कि हर तरह से उसके विकास में रूकावटें खड़ी कीं, लेकिन आचार्य शुक्ल अंग्रेजी

राज में किसानों, जमींदारों और व्यापारियों से सम्बन्धित अन्तर्विरोध को विश्लेषित करने मे अपने एकांगी दृष्टिकोण का सहारा लेते रहे, जो उनके राष्ट्रीय आंदोलन सम्बन्धित दृष्टिकोण को उजागर करता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी प्रदेश में राष्ट्रीय आंदोलन के साहित्यिक मोर्चे पर सामने आये। उन्होंने साहित्य को लोक जीवन से जोड़ने की मांग कर साहित्य को जनसमस्याओं से जोड़कर देखा। उन्होनें अपना लेखन जिन प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में किया, वे राष्ट्रीय अस्मिता और राष्ट्रीय परम्परा से सम्बन्धित थे। उन्होंने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के मूल में निहित आर्थिक कारणों को उजागर करते हुए राजनीतिक आंदोलनों की जरूरत को समझा। उन्होंने न केवल भारतीय जनता की आर्थिक स्थितियों को समझा बल्कि उसके लिए उत्तरदायी ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के चरित्र को भी उजागर किया। इस विवेचन में शुक्ल जी कृषक वर्गों के संगठन के प्रति तो सचेत दिखाई देते हैं किन्तु स्वाधीनता आंदोलन में मजदूरों की भूमिका को ठीक से रेखांकित नहीं करते। वे स्वाधीनता आंदोलन और उस दौर की राजनीतिक गतिविधियों को बहुत निकट से देख रहे थे। अपने साम्राज्यवाद विरोधी साहित्य लेखन में शुक्ल जी ने राष्ट्रीय चरित्र संबंधी प्रश्नों का विवेचन किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना था कि किसी भी राष्ट्रीय गौरव का महत्वपूर्ण आधार है इतिहास। बिना इतिहास के राष्ट्र का स्वरूप संभव नहीं और न उसकी पहचान। शुक्ल जी के इस साहित्यिक संघर्ष का उत्कर्ष 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' है। यह अत्यन्त रूचिकर है कि शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास के चरणबद्ध विकास को जिस तरह व्याख्यायित किया वह निश्चित रूप से विद्यार्थियों की जरूरतों को उन संदर्भों में देखकर लिखा जिन्हें राष्ट्रीय आंदोलन ने पेश किया था। कुल मिलाकर कहा जाये तो साहित्य के प्रति आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की अवधारणों के निर्माण में और उनकी आलोचना दृष्टि के विकास में राष्ट्रीय आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

उत्तराधुनिकता, वैश्विक संस्कृति और उदय प्रकाश की कहानियां

विकास साव

भूमंडलीकरण को उदारीकरण, वैश्वीकरण, बाजार–अर्थव्यवस्था, आर्थिक–सुधार, उत्तर–आधुनिकतावाद, विश्वग्राम आदि कई नामों से जाने जाते हैं। इसका कैनवास बहुआयामी है। यह अपने भूमि में अवधारणा, प्रक्रिया और अभियान आदि तीनों तत्वों को समेटे हुए हैं। इस व्यवस्था या फिर वाद की शक्ति इतनी मायावी है कि यह हर वस्तु को अपने साँचे में ढाल लेती है। इस सन्दर्भ में डॉ अभय कुमार दूबे का कहना है कि "भूमंडलीकरण एक बेहद ताकतवर परिघटना है जो सब कुछ बदल दे रही है। वह दोनों तरफ से बदलती है यानि वह हालत को अपने सारभौमिक साँचे में तो ढालती ही है उसके प्रति उसके विरोधियों की प्रतिक्रिया भी एक खास तरह के परिवर्तन को जन्म देती है जो शुरू में भूमंडलीकरण के खिलाफ लगता है, पर अंतिम विश्लेषण में उसकी संरचनाओं की मदद करता पाया जाता है।" आज उत्तराधुनिक समय का रूप और भी बदला है। विश्व में साम्राज्यवाद का ढ़ाचा भले ही समाप्त हो गया है परंतु अस्तित्व रूप में वह भूमंडलीकरण के छवानी में एक नए साम्राज्यवाद के रूप में सामने आया है। जिसे हम नव आर्थिक उपनिवेशवाद के रूप में जानते हैं । जिसमें पूंजीवादी व्यवस्था भले ही पिछड़े हुए देशों को आर्थिक सहायता पहुंचाकर उनके आर्थिक व्यवस्था और ढांचे को ग्लोबल चेहरा देना चाहता हो परंतु वास्तविकता कुछ और ही है । सच तो यह है पूंजीवादी देश भूमंडलीकरण की आड़ में विकाशशील देश और तीसरी दुनिया पर अपनी धाक जमाना चाहते हैं । वास्तव में पूंजीवादी देश पिछड़े देशों को विकाशशील बनाना चाहते हैं । इन देशों की आर्थिक व्यवस्था और ढांचे को ग्लोबल रूप प्रदान करना चाहते हैं जिससे वे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अपनी साख बना सकें।" वास्तव में भूमंडलीकरण पूंजीवादी देशों द्वारा बनाया गया एक ऐसा खेल है जिसमें खेल तो सभी देश खेल रहे हैं परंतु जीत अंतिम में पूंजीवाद की ही होगी ।

आज का समय वैश्विक संस्कृति और वैश्विक समाज का है। इस सामाजिक–संस्कृति में किसी भी देश का अपना मौलिक यथार्थ नहीं रह जाता है। वास्तव में मौलिकता का अखंड रूप अनेक अर्थ, अनेक विचार, अनेक सत्ता और अनेक पार्टियों में बदल गया है। आज के समय में सबसे बड़ा संकट यथार्थ के मिथ्या प्रस्तुति से है जहां इंसान सिर्फ प्रायोजित है, वस्तु है, और कुछ नहीं। जहां न कोई मूल्य है, न आदर्श है और न ही सत्य है जिसको आधार बनाकर जीवन और संघर्ष से उत्पन्न समस्याओं को सुलझाया जा सके। वैश्विक समाज का एक अंतर्विरोध यह भी है कि वह एक समय में स्थानीयता का जामा पहनकर विश्व नागरिकता की पहचान में लिप्त है। यही कारण है कि यह समय एक तरफ भौतिकता के बाढ़ से ग्रसित होने के साथ साथ जातीय विद्वेष से भी अभिशप्त हैं। नतीजा, मनुष्य उत्तर मूल्यों से युक्त होने के बाद भी अपने पारंपरिक तथ्यों का मोह छोड़ नही पता है। ऐसे समय में चर्चित कहानीकार उदय प्रकाश की कहानियां पाल गोमरा का स्कूटर, वारेन हेस्टिंग का साड़, तिरिछ, राम सजीवन की प्रेमकथा, और अंत में प्रार्थना, पीली छतरी वाली लड़की, मोहन दास इस दृष्टि में ज्यादा महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हो जाता है।

आज हम जिस समय में जी रहे हैं वह तीव्रता से ग्लोबलाइजेशन, तेजी से बदलते जीवन मूल्य, पाश्चात्य संस्कृति से लिप्त जीवन शैली का प्रारूप बढ़ रहा है। आज बाजार समाज के समवेशी रूप के स्थान पर उसे तोड़ने के रूप में काम कर रहा है। वैश्विक संस्कृति और बाजार ने रिश्तो को वस्तु में तब्दील कर दिया है। इस संबंध में उदय प्रकाश पाल गोमरा का स्कूटर में कहता हैं कि "बाजार अब सभी चीजों का विकल्प बन

चुका था। शहर, गाँव, कस्बे बड़ी तेजी से बाजार में बदल रहे हैं । हर घर दुकान में तब्दील हो रहा है । बाप अपने बेटे को इसीलिए घर से निकालकर भगा रहा था, कि वह बाजार में फिट नहीं बैठ रहा था। पत्नियाँ अपने पतियों को छोड़–छोड़ कर भाग रही थीं क्योंकि बाजार में उनके उनके पतियों का कोई खास मांग नहीं थी। औरत बिकाऊ और मर्द कमाऊ का महान चकाचक युग आ गया था।" औरत बिकाऊ और मर्द कमाऊ के युग में इंसानियत, मानवता और प्रेम का कोई महत्व नहीं रह गया था। ऐसी उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हो रहा था जिसमें पैसा ही सबकुछ है। आज हमारे इर्द–गिर्द परिवर्तन की रफ्तार इतनी तेज हो गई है कि हम चाहकर भी अपने को स्थिर नही कर पर रहे हैं। आज उपभोक्तावादी संस्कृति में पल रहे बाजार इस स्थिति को एक व्यापक रूप दे रहा है। आज बाजार इसी महत्वाकांक्षा को अपने फायदे के लिये भुना रहा है। समसामयिक घटनाओं पर नजर डाले तो पाएंगे कि बाजार की इस मायावी दुनिया ने किशनगंज के एक सफाई कर्मचारी की बेटी सुनीला और छपरा की प्राइमरी स्कूल की टीचर आशा मिश्रा जैसी लड़कियों को अपनी जाल में फँसा लेते हैं। विज्ञापन एजेंसियाँ उनके देह का बाजारीकरण कर लोगों की कामुकता का बढ़ावा देती हैं। उदयप्रकाश कहते हैं, ''सुनीला रातोंरात मालामाल हो गई थी। टी.वी. के विज्ञापन में वह आठ फुट बाई चार फुट साइज के विशाल ब्लेड के मॉडल पर नंगी सो गई थी। सुनीला को अपने चेहरे पर उस ब्रांड के ब्लेड से होने वाली सेविंग चिड़ियों के पर के स्पर्श से उपजने वाले सुख और आनंदातिरेक को दस सेकंड के भीतर व्यक्त करना था।" इन विषयों पर मीडिया भी पीछे नही है। टीवी और प्रिंट मीडिया पर प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों में नारी देह के अधिक स्थान दे रखा है ।

बाजारवाद के नकारात्मक पहलुओं उस समय के कई कहानीकारों ने बड़े अर्थपूर्ण ढंग से अपनी रचनाओं में उठाते है। प्रसिद्ध कथा लेखिका मृदुला गर्ग ''कलि का सत'' में पौराणिक पात्रों की मानसिकता को उत्तर आधुनिकतावादी विचारों के वातावरण में दिखाने का प्रयास किया है। पौराणिक पात्र, भरत और उर्मिला आधुनिक पीढ़ी के वारिस के रूप में नजर आते हैं। इनमें पर्यावरण और संस्कृति की सुरक्षा के नाम पर जंगलों का अस्तित्वविहीन करके गार्डन, पेप्सी फाउंटेनों और रेस्टोरेंटो आदि का यथार्थ रूप सामने लाया है। पर्यावरण आज की संदर्भ में बाजार और विज्ञापन के साँसे बिकाऊ चीज के रूप में प्रस्तुत होते है। कथाकार सुरेन्द्र वर्मा, मनोहरश्याम जोशी बाजारू ताकतों द्वारा स्त्री के पतन की कहानी को कहते हैं। वैश्वीकरण और उत्तर आधुनिकता ने स्त्री शोषण के नये आयाम को खोल कर एक नए परिभाषा के रूप में दिखाया है, मुनाफे का बाजार पुरानी रूढ़ियों को फिर से नए जमीन देकर सामने ला रहे हैं। स्त्री सबसे बड़ा उपभोक्ता वर्ग और सामान बेचने में सहायक बना दी गई है। डॉ. शिवकुमार मिश्र ने अपने लेख ''रमैया की दुलिहन ने लुटा बाजार'' में इस सत्य को अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं, ''आज उत्पाद है, उपभोक्ता हैं, वस्तुएँ हैं और वस्तुओं में बदलता आदमी और उसकी आदमीयत है।.......टी.वी. चौनलों पर चौबीस घंटे छाये रहने वाले विज्ञापनों पर एक निगाह डालिए– दैहिक भौतिक सुखभोगवाद के साधनों का प्रचार करते बच्चे–बूढ़े, किशोर–जवान, स्त्री–पुरुषों की एक भीड़, उनके हाव–भाव, उनकी भाषा, उनका हर ढंग और ढब जो उनका नहीं, उन लोगों के द्वारा तय किया गया है जो उनका इस्तेमाल कर रहे हैं। उदयप्रकाश की कहानियों में ऐसी असंख्य घटनाएँ दर्शक को उस स्थान तक ले जाने का प्रयास करती है जहां मनुष्य की इच्छाएं उपभोक्तावादी संस्कृति के दुष्परिणामों से ग्रसित होकर बीभत्स रूप धारण कर लेती है। 'मैंगोसिल' कहानी में बिल्डर शेठ और दारोगा की हैवानियत उपभोक्ता संस्कृति का ऐसा ही नरभक्षी पिशाच है।

आज उपभोक्तावादी संस्कृति के बिंब छलनामय हो गए हैं। यथार्थ ही हमारे सामने यथार्थ बनकर घूम रहा है। यह आभासी यथार्थ का युग है। कहानीकार उदयप्रकाश ने इसी आभासी यथार्थ का प्रयोग अपनी कहानियों में किया है। उन्होंने लोहे को काटने के लिए लोहे का प्रयोग किया है। उनकी एक कहानी है तिरिछ। एक

बच्चा अपनी फैंटेसी की दुनिया के द्वारा पूँजीवादी समाज के यथार्थ को व्यक्त करता है। तिरिछ एक ऐसा जीव है जिसके काटने पर व्यक्ति को तत्काल कुछ महसूस नही होता, उसका जहर धीरे–धीरे अपना असर दिखाता है। "वह तिरिछ है, काले नाग से सौ गुना ज्यादा उसमें जहर होता है। उसी ने बताया कि सांप तो तब काटता है य जब उसके ऊपर पैर पड़ जाए या जब कोई जबरदस्ती उसे तंग करे। लेकिन तिरिछ तो नजर मिलते ही दौड़ता है। पीछे पड़ जाता है। उसमे बचने के लिए कभी सीधे नही भागना चाहिए। टेढ़ा–मेढ़ा, चक्कर काटते हुए, गोल–मोल दौड़ना चाहिए।'' आज उत्तर आधुनिक समय में मनुष्य का जीवन इसी तिरिछ रूपी संस्कृति ने अपने विष से इतना ग्रसित किया है जिससे बाहर निकाल पाना मनुष्य के लिए मुश्किल है।

आज हमारे जीवन पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का दखल बढ़ रहा है। खास कर आज की युवा पीढ़ी और बच्चे। आज घरेलू जीवन पर ये कंपनियाँ अपना नागपासी रूप को फैला रखा है। आज घर में नाश्ता क्या बनेगा, इसे तय करते हैं आज के बच्चे। तीन वर्ष का बच्चा यदि मैगी खाने या पेप्सी पीने की जिद पकड़ता है तो हमें समझ लेना चाहिए कि यह अनजाने में उसके मस्तिष्क में विज्ञापनों ने अपना अधिपत्य जमा रखा है। मतलब नाश्ता क्या बनेगा, यह माता–पिता नहीं, बल्कि कहीं बहुत दूर से बहुराष्ट्रीय कंपनियां तय कर रही हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां अब बच्चों में अपना बाजार देख रही हैं। आजकल टीवी पर आने वाले कई विज्ञापन ऐसे हैं, जिसमें उत्पाद तो बड़ों के लिए होते हैं, पर उसमें बच्चों का इस्तेमाल किया जाता है। घर में नया टीवी कौन सा होगा, किस कंपनी का होगा, या फिर वाशिंग मशीन, मिक्सी किस कंपनी की होगी, यह बच्चे की जिद से तय होता है। आज बहुराष्ट्रीय कंपनियां बच्चों के माध्यम से अपने उत्पाद बेचने की कोशिश में लगी हुई हैं। उदय प्रकाश ने अपनी कहानियों में अनेक ऐसे प्रसंग है जिसके माध्यम से बाजारवादी उपभोक्तावादी संस्कृति के वीभस्त रूप का उजागर किया है। इसके शिकंजे में फंसे मनुष्य की नियति को भी प्रकट किया है। आज तकनीक या प्रौद्योगिकी पूंजीवादी व्यवस्था के परिवर्तनकारी शक्तियों ने मनुष्य की मनुष्यता के मानदंड को निश्चित कर दिया है। जहां मनुष्य एक यंत्र बनकर रह गया है और एक पुर्जे की तरह काम करता है। मनुष्य वस्तुतः एक व्यक्ति न होकर एक मशीनी नम्बर बनकर रह गया है जिसमें मनुष्य वस्तु की तरह गिने जाते हैं। वास्तव में, तकनीक की दुनिया में मनुष्य अपने आपको समायोजित करता है, बदलता नहीं। धीरे–धीरे वह तकनीक की गिरफ्त में आ जाता है, उसी से उसकी दिनचर्या निर्धारित होती है । सच कहा जाए तो आज मानवता जैसे गुम सा हो गया है। परिणामतः मानव मात्र की इच्छाएँ या आदतें एक जैसी हो गई है। बाजारवादी संस्कृति में मनुष्य चीजों में तब्दील हो गया है। जिसका मूल उद्देश्य भौतिक वस्तुओं के पीछे भागना और निरंतर संघर्ष करते हुए अपने आप को कायम रखने के भ्रम को बरकरार रखना।

उत्तर आधुनिकता में पूंजी को ज्यादा महत्व दिया गया है। समाज का हर क्षेत्र इसी पूंजी पर आश्रित होना चाहता है। पारिवारिक मूल्य और संबंध सभी पूंजी के आधार पर तय होने लगे हैं। आज वैश्विक युग में पूंजी–अर्थ का नंगा नाच हो रहा है। समाज, धर्म, परिवार, शिक्षा, प्रशासन सब पर एक सिरे से धन का आधिपत्य हो गया है । कबीर जिस माया में नारी को देखते थे आज वही माया पूंजी के रूप में उभर कर सामने आई है । उत्तर आधुनिक दौर में उदय प्रकाश माया के यथार्थ रूप को परखते और समझते हैं। उनकी कहानियों में विकास के नाम पर भारत में स्थापित पूंजीवादी व्यवस्था का क्रूर चेहरा प्रस्तुत किया है। मैंगोसिल में वे कहते हैं 'यहाँ हर जगह अब बस एक ही ध्रूव बचा था। निर्ममता, बर्बरता, लोलुपता, अनैतिक सत्ता और समृद्धि का ध्रूव, इसके अलावा और कोई दूसरा विकल्प ही नहीं है।' वास्तव में मैंगोसिल कहानी में लेखक भूमंडलीकरण के साथ विकसित हो रहे उन्नति और प्रगति के उस भ्रमित मॉडल को अस्वीकार

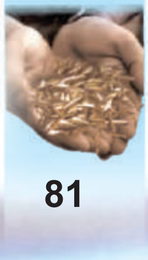

किया है, जो समाज में केवल एक ही वर्ग की संपन्नता व समृद्धि को पोषित करता है।

आज की विज्ञापन संस्कृति ने नशाखोरी के प्रचलन को बढ़ावा दिया है। उत्तर आधुनिक समय में अपने को अपडेट होने की प्रक्रिया में सामाजिक व्यवस्था में नशा के रूप में जहां विस्तार हुआ है वही उसके स्वरूप में परिवर्तन भी हुआ हैं । आज नशा पुरुष वर्ग तक ही सीमित न रहकर स्त्री और बच्चे भी इसके अधीन हो गए हैं । उदय प्रकाश की कहानी 'दिल्ली की दीवार' इसका सफल उदाहरण है। युवा–छात्र वर्ग राजवती गुलशन द्वारा मुफ्त में दिये गए शराब का मजा लेते हैं। आज समाज में जिस तरह से लोग जिस्म की नुमाइश कर रहा है। विज्ञापन युग के खुले बाजार में अपने जिस्म की मर्यादा को खुला छोड़ दिया है उसका विभत्स रूप उदय प्रकाश अपनी कहानी मैंगोसिल में दिखाने का प्रयास किया है। इस कहानी का दारोगा और उसका दोस्त बिल्डर शराब का पार्टी करता है। उदयप्रकाश इस कहानी में दिखाते हैं कि – "जिस दिन पार्टी होती और दारोगा के साथ दोस्त भी आ जाता है, वह रात शोभा के लिए अमानवीय यंत्रणा और पीड़ा की रात होती । नशे के बाद उन लोगों के भीतर बैठा जानवर जाग जाता और उस कमरे में उस जानवर के उत्पात और उसकी बनैली– बहसी हिंसा की शिकार बनती शोभा। वे लोग नशे में गाना गाते, शराब पीते, मछली के पकौड़े की तारीफ करते, हँसते और शोभा को नोचते–खसोटते। (शोभा का पति) रमाकांत इस सब में उनका उत्साह बढ़ाता।"

आज भूमण्डलीकरण के दौर में उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण सारा विश्व बाजार के रूप में स्थापित हो चुका है। चरम उपभोकतवाद के इस दौर में बाजार का जादू आदमी के मानसिक चेतना पर अपना अधिकार जमा लिया है। आंखों का देखना और दिमाग का समझना सब गड़बड़ जैसा हो गया है। सब ओर लालच, भ्रम, हिंसा, अपराध और भूख का साम्राज्य छाया हुआ है। बड़े बड़े अर्थशास्त्री मुक्त बाजार और व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद कर रहे हैं परंतु ऐसे समय में एक आम आदमी के लिए क्या विकल्प है जो प्रतिस्पर्द्धा में अपने आपको खड़ा करने की वजह शांतिपूर्ण जीवन के हिमायती है। 'पाल गोमरा का स्कूटर' और 'वोरेन हेस्टिंग्स का साँड' कहानी में उपनिवेशिक इतिहास के संदर्भ को बहुत ही बारीकी से उकेरा है। वास्तव में उदय प्रकाश की समस्त कहानियां सामाजिक संरचना और प्रक्रिया पर केन्द्रित है जहां सामंतवाद, उपनिवेशवाद, स्वतंत्रोत्तर राजनीतिक वर्चस्व भूमंडलीकरण सभी व्यवस्थाओं का चरित्र जन विरोधी है। कहीं न कहीं उनमें शोषण की कड़ी जुड़ी हुई है। आजादी के बाद भारत में केवल लोकतान्त्रिक व्यवस्था के नाम पर केवल सत्ताकामी–पूंजी, काम–भ्रष्ट राजनीतिज्ञाओं और भ्रष्ट नौकरशाही तथा छल बल से लैस गुंडों का तंत्र विकसित हुआ है । उदय प्रकाश की कहानी 'और अंत में प्रार्थना' और मोहनदास इसी चिंता को अभिव्यक्त करता है।

वास्तव में उदय प्रकाश की कहानियाँ समाज की स्थितियों पर अपनी पैनी नजर रखती हैं। उनकी कहानियां वर्तमान संदर्भों में निरंतर बदलते हुए यथार्थ मरीन समसामयिक तेवरों को पाठक के सामने प्रस्तुत करती हैं। सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक व्यवस्था में पल रहे परिवर्तनकारी संदर्भों को मानव जीवन दर्शन से आकने का प्रयास है उनकी कहानियाँ।

साहित्य, समाज और मानव संबंध : नए आयाम

डा. संतराम यादव

हमारी प्राचीन सभ्यता अति समृद्ध थी। यह इतनी उन्नत थी कि हमें आज भी उस पर गर्व है। राष्ट्र और समाज के समृद्ध साहित्य से ही राष्ट्र और समाज की समृद्धि निर्भर करती है। किसी भी राष्ट्र और समाज की स्थिति जानने के लिए उस राष्ट्र का साहित्य देखा जाता है। मानव समाज के युग–युग से संचित ज्ञान के भंडार को ही साहित्य कहा जाता है। आदिकाल से आधुनिक काल तक मानव ने ज्ञान के दुर्गम क्षेत्र में व्याप्त आलोक की उपलब्धि अर्जित की है। मानव जाति हेतु हितकर, सुखकर व श्रेयस्कर जो भी चीज होती है, उसे हम साहित्य की संज्ञा से विभूषित करते हैं। साहित्य का शाब्दिक अर्थ 'हि सहितम साहित्यम्' है। यह संस्कृत के 'सहित' शब्द से बना है। संस्कृत विद्वानों के मतानुसार, साहित्य का अर्थ "हितेन सह सहित तस्य भवः" अर्थात कल्याणकारी भाव है। साहित्य लोक कल्याण के लिए ही सृजित होता है। महान विद्वान योननागोची के अनुसार समाज और राष्ट्र नष्ट हो सकते हैं परंतु साहित्य नहीं। मनुष्य ने जब से लिखना व पढ़ना शुरू किया तभी से साहित्य का सृजन होता आया है। फिर चाहे वे प्राचीन ऋषि रहे हों जिन्होंने वेद की ऋचाएँ गाईं या इस देश के आदिकवि रहे हों।' विश्व में प्राचीन वाचिक साहित्य आदिवासी भाषाओं में प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृत साहित्य ऋग्वेद से प्रारंभ होता है। व्यास, वाल्मीकि जैसे पौराणिक ऋषियों ने महाभारत एवं रामायण जैसे महाकाव्यों की रचना की। भास, कालिदास एवं अन्य कवियों ने संस्कृत में नाट्य रचनाएं की। भक्ति साहित्य में अवधी भाषा में गोस्वामी तुलसीदास, बृज भाषा में सूरदास, मारवाड़ी में मीरा बाई, खड़ी बोली में कबीर, रसखान, मैथिली में विद्यापति आदि की रचनाएं साहित्य की अमूल्य धरोहर है। किसी भाषा की वाचिक और लिखित सामग्री को साहित्य कह सकते हैं। साहित्य समाज का दर्पण, प्रतिबिंब, मार्गदर्शक तथा लेखा जोखा होता है। किसी भी राष्ट्र या सभ्यता की जानकारी उसके साहित्य से ही प्राप्त होती है। साहित्य लोकजीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी काल के साहित्य से उस समय की परिस्थितियों, जनमानस के रहन सहन, खान पान व अन्य गतिविधियों का पता चलता है। आत्मा का शरीर से जो संबंध है वही साहित्य का समाज से है। साहित्य समाज रूपी शरीर की आत्मा है जो अजर व अमर है। समाज और साहित्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने साहित्य की भावना को अपने मतानुसार व्यक्त किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब' माना है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'ज्ञानराशि का संचित कोश' कहा है। पंडित बाल कृष्ण भट्ट 'जन समूह के हृदय का विकास' मानते हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में "केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए, उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।" मुंशी प्रेमचंद जी ने कहा है कि "साहित्य राजनीति के आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।"

साहित्य, समाज और मानव के संबंध में अन्य मनीषियों में महान ग्रीक पंडित के मतानुसार "मानव की अनुकरण वृत्ति ही साहित्य का उद्‌गम है।" पाश्चात्य विद्वान क्रोंचे की दृष्टि में "आत्माभिव्यंजन ही साहित्य सृष्टि का मूल स्त्रोत है।" फ्रायड के सिद्धांतानुसार "साहित्य प्रणयन के कारण शामित वासनाओं की मानसिक

तुष्टि ही है।" एक विदुषी का मत है कि "सौंदर्य की अनुभूति और आनंद के अतिरेक की व्यंजना ही साहित्य प्रणयन का मूल कारण है।" एक अन्य विद्वान का मत है कि "मानव जीवन का अपूर्णता को पूर्णता की ओर ले जाने का प्रयास ही साहित्य सर्जन का आधार बिंदु है।" हिंदी भाषा के संबंध में इंग्लैंड के विद्वान डॉ.मैग्रेसर ने कहा था कि "हिंदी दुनिया की महान भाषाओं में से एक है। भारत को समझने के लिए हिंदी का ज्ञान अनिवार्य है।" भारत एक विशाल देश है। यह एक बहुभाषी, बहुधर्मी और विविध संस्कृतियों वाला देश है। यहां 224 भाषाएं बोली जाती हैं जिनमें से 22 भाषाएं संविधान की अष्टम अनुसूची में शामिल हैं। सवा सौ करोड़ से अधिक की भारतीय आबादी में से लगभग 53 करोड़ हिंदी भाषा भाषी हैं।

साहित्य, समाज और मानव में चोली दामन का संबंध है। वह अभिन्न और समरूप है। जिस तरह जल के बिना नदी का अस्तित्व संभव नहीं है, सूर्य के बिना किरणों का कहीं स्थान नहीं है, चंद्रमा के बिना चाँदनी नहीं छिटक सकती, उसी तरह समाज के बिना साहित्य और साहित्य के बिना समाज नहीं रह सकता। समाज एक चक्र है तो साहित्य उसकी धुरी है। पृथ्वी अपने चक्र पर घूमती है तो साहित्य, समाज रूपी कक्ष पर चक्कर काटता रहता है। साहित्य की तेजस्विता हमारे निष्प्राण जीवन में बिजली की शक्ति संचालित कर कल्याण करती है। भारतीय साहित्य, व्योम की तरह विस्तृत और गंगा के समान गौरवपूर्ण एवं पवित्र है। इसकी आत्मा में लोक कल्याण की भव्य भावनाएं हिलोरें मारती रहती हैं। साहित्य समाज का दर्पण और मार्ग दर्शक है। यदि समाज की चेतना कुंठित होने लगे तो साहित्य ही समाज का पथ प्रदर्शक बनकर उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। साहित्य, देश, जाति, व्यक्ति के विकास का बीज है। किसी देश की संस्कृति और सभ्यता की जानकारी हेतु इसका अध्ययन जरूरी है। साहित्य में हमें भीम के प्रचंड भुजदंड़ों का गर्जन, श्याम विहारी का मधुर मुरलीवादन, राम के धनुष की टंकार और अर्जुन का गांडीव घोष सुनाई देता है। यह मानव कल्याणार्थ धार्मिक, वैचारिक, सामाजिक, ऐतिहासिक घटनाओं और राजनीतिक परिस्थितियों का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है।

भारतीय साहित्य का इतिहास गौरवपूर्ण है। साहित्य राष्ट्र की धरोहर होती है। कोई भी राष्ट्र इसकी उपेक्षा करके प्रगति नहीं कर सकता। इसमें हम सम्राट पृथ्वीराज की अमर गाथाएं तथा हम्मीर और विसलदेव की वीरताओं का ओजपूर्ण वर्णन पाते हैं। वीर काव्यों से परिपूर्ण हिंदी साहित्य को हम भक्ति रस के अजस्र प्रवाह से ओत प्रोत पाते हैं। किसी देश का साहित्य ही वहां के समाज, सभ्यता एवं सांस्कृतिक उपल्बि्धयों का लिखित दस्तावेज होता है। साहित्य में सहित का भाव होने से मानव सब कुछ खोकर भी अपनी जाति की तस्वीर साहित्य में देखना चाहता है। बिना साहित्यिक साक्षात्कार के हम समुद्र, नदी, पर्वत, वन, उपवन, चंद्र, सूर्य आदि पदार्थों का आंतरिक सौष्ठव नहीं देख सकते। साहित्य के बिना हम प्राकृतिक सुषमाओं के रस को लेने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। फूल को जितना साहित्यकार समझता है, उतना शायद भौंरा भी नहीं समझता होगा। साहित्य में वह अद्‌भुत शक्ति है जो अतीत को वर्तमान और वर्तमान को भविष्य बना सकता है। वह कांच को कंचन कर सकता है। अदृश्य को दृश्यमान करना उसकी सहज प्रवृत्ति है। साहित्य की तेजस्विता हमारी निष्प्राण नसों में बिजली भरती है। मानव जन्म से मृत्युपरंत तक साहित्य से हर समय जुड़ा रहता है। साहित्य हमारे जीवन व्यापार के साथ नहीं चलेगा तो अपने पूर्वजों से हमारा संबंध टूट जाएगा। इसीलिए माना जाता है कि मानव सभ्यता के विकास में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। विचारों ने साहित्य को जन्म दिया तथा साहित्य ने मानव की विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की, उसे सभ्य बनाने का कार्य किया।

साहित्य जनहित के लिए होता है। साहित्य और समाज का संबंध बहुत पुराना है। मानव की विचारधारा में परिवर्तन लाने का कार्य साहित्य द्वारा ही किया जाता है। ऐतिहासिक गतिविधियों से ज्ञात होता है कि किसी भी राष्ट्र या समाज में साहित्य के माध्यम से ही अनेकानेक परिवर्तन हुए थे। साहित्यकार समाज में फैली कुरीतियों, अभावों, असमानताओं, विकृतियों, विसंगतियों और विषमताओं से अवगत कराते हुए जनमानस में जागृति लाने का प्रयास करता है। यदि सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन होने लगे तो साहित्य ही जनमानस का मार्गदर्शन करता है। जीवन में मानव के साथ घटित घटनाओं से ही साहित्य रचना होती है क्योंकि वह इसका महत्वपूर्ण अंग है। साहित्यकार समाज में घटित घटनाओं को देखते व अनुभव करते हुए उनका चिंतन व विश्लेषण करनोपरांत उन घटनाओं को मूर्तरूप प्रदान करता है। साहित्यकार समाज के विभिन्न पक्षों से सृजन हेतु विषयवस्तु का चयन करते हुए अपने विचारों और कल्पना को जोड़ता है। साहित्य सदैव समाज की शोभा व यश संपन्नता और मन मर्यादा को प्रतिबिंबित करता है। साहित्य और समाज भिन्न नहीं है। यदि समाज शरीर है तो साहित्य उसकी आत्मा है। साहित्य हमारी ज्ञान पिपासा को तृप्त करता है। साहित्य हमारी बौद्धिक भूख मिटाता है। साहित्य से राष्ट्रीय इतिहास, संस्कृति और सभ्यता, पूर्वजों के अमूल्य विचार, प्राचीन रीति रिवाज, रहन सहन और परंपरा का परिचय पाते हैं। साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का वाहक होता है तथा समकालीन समाज को आपस में जोड़ने का साधन भी है। साहित्य से हमें अतीत के रहन सहन व सामाजिक संरचना, आचार विचार, आहार व्यवहार और कला संस्कृति की जानकारी मिलती है। साहित्य मनोरंजन का साधन और उपदेश का माध्यम है। यह सामाजिक व धार्मिक और सांस्कृतिक इच्छा व आकांक्षाओं तथा भावुकताओं को तृप्त करने का साधन है। यह हमसफर, हमकदम, साहस बटोरने, क्रोध जगाने, आक्रोश पैदा करने और विद्रोह करने का संसाधन भी है। साहित्य मनुष्य के हर भटकाव को रोकता है इसलिए दोनों में पारस्परिक संबंध कायम है। साहित्य समाज की विपत्ति और उद्विग्नता में बिखराव और टूटन को सहेजता है। साहित्यकार सदा से आम जनता के दुख दर्द से रूबरू होकर जीवन प्रक्रिया को अंकित करता रहा है। मानव जीवन और सामाजिक आचार व्यवहार में किसी भी देश के साहित्य, भाषा, वाक्य, शब्द, वर्ण का महत्व सदा से रहा है और यह अनन्त काल तक रहेगा।

किसी भी विधा का साहित्य, मनुष्य के जीवन और परिवेश से इतर नहीं है। साहित्य, कला और संस्कृति से समाज के गहरे ताल्लुकात होने की बात प्राचीन काल से स्वीकृत और प्रमाणित है। कला और संस्कृति के विभिन्न रूपों का उपयोग व्यक्ति और समाज के सुव्यवस्थित जीवन और संचालन के लिए सदैव होता आया है। सर्जनात्मक साहित्य के निर्माण में समाज की विशेष भूमिका होती है। चूंकि समाज ही साहित्य की उत्पत्ति और उसके स्वरूप का निर्धारण करने वाला मुख्य घटक है इसलिए उसे समाज का दर्पण भी माना गया है। आजकल लेखन के क्षेत्र में शिल्प, शैली, भाषा संरचना, शब्द संस्कार, आदि इतने महत्त्वहपूर्ण हो गए हैं कि इन सबका सीधा संबंध रचनाकारों की विचारधारा और उनकी जीवन दृष्टि से हो गया है। साहित्यकार का व्यक्तित्व, विचारधारा, दृष्टिकोण और उसका सामाजिक व राष्ट्रीय सरोकार भी होता है जो कि साहित्य और पाठक के बीच सहसंबंध स्थापित करता है। इसका मूल कारण यह है कि कोई भी साहित्यिक कृति पाठक के पास पहुँचकर ही अपनी सार्थकता सिद्ध करती है। साहित्य तत्कालीन समय के आम जनजीवन को चित्रित करता है इसीलिए यह इतिहास भी है। अकबर के शासन काल में जनता की आपसी बातचीत का असर राजकाज और पारिवारिक संबंधों पर पड़ता था। अकबर कालीन इतिहास और तुलसीकृत 'रामचरित मानस' में ये बातें स्पष्ट झलकती हैं।

साहित्य का उद्‌गम स्थल समाज है। यहां उसका स्वरूप बनता, बिगड़ता और संवरता रहता है। साहित्य किसी व्यक्ति द्वारा लिखा जाता है, समूह द्वारा पढ़ा जाता है तथा समूह के प्रति अपना दायित्व निभाता है। वह समाज को सत्यं, शिवं और सुंदरम की ओर अग्रसर करता है। साहित्य क्रांति का अगुआ बनकर शोषण व अत्याचार के विरुद्ध आवाज बुलंद करता है। साहित्य और समाज के बीच नमक और आटे का संबंध बना रहता है। राष्ट्र और भाषा के संबंध में समाजशास्त्र के बिना बातचीत असंभव है। साहित्य व समाज का पारस्परिक संबंध कृतिकार के सामाजिक सरोकार पर निर्भर करता है। एक जिम्मेदार लेखक साहित्य सृजन के लिए कलम उठाता है तो उसके सामने जिम्मेदारी का बहुत बड़ा लक्ष्य खड़ा रहता है। इस लक्ष्य को पूरा करना वह अपना धर्म समझता है।

अंत में हम कह सकते हैं कि साहित्य, समाज और मानव का बड़ा गहरा रिश्ता है। मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में कृषकों पर जमींदारों के बर्बर अत्याचारों एवं महाजनों द्वारा उनके क्रूर शोषण के चित्रों ने समाज को जमींदारी उन्मूलन एवं ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों की स्थापना को प्रेरित किया। बंगाल में शरतचंद्र जी ने अपने उपन्यासों में कन्याओं के बाल विवाह की अमानवीयता एवं विधवा विवाह को उजागर किया जिससे बाल विवाह निषेध कानून बना तथा विधवा विवाह का प्रचलन हुआ। संपूर्ण मानवता साहित्यकारों के अनंत उपकारों की ऋणी है। परंतु बदलता सामाजिक परिवेश हमारे समक्ष एक नई चुनौती के रूप में उभरकर आ धमका है। सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में पुस्तकों को पढ़ने की प्रवृत्ति का लोप होकर इंटरनेट से ज्ञानार्जन पर बल दिया जाने लगा है। हमें बदलती परिस्थितियों में स्वयं को ढालकर साहित्य उपलब्ध कराना होगा। साहित्य और समाज का विकास एक दूसरे पर निर्भर करता है। उच्च कोटि का साहित्य सामाजिक कुरीतियों से छुटकारा दिलाता है। हमें साहित्य सृजन कार्य में सहयोग करके समाज को सशक्त एवं समृद्ध बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देना ही होगा।

गागर–गागर से महासागर बनती हिन्दी

नलिन खोईवाल

हिन्दी भाषा नहीं, वाणी है, वाणी शासन की नहीं ... जन–जन की वाणी..... तन की नहीं, मन की। भाषाओं के गुलशन में हिन्दी एक ऐसा पुष्प है, जो माधुर्य, सौंदर्य और सुगंध से भरपूर है। माधुर्य के कारण हिन्दी मिष्ट है, सौंदर्य के कारण हिन्दी शिष्ट है और सुगंध के कारण हिन्दी विशिष्ट है।

हिन्दी में जो सामर्थ्य है वह संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं है। हिन्दी संसार की एकमात्र ऐसी भाषा है, जिसे जिस रूप में बोला जाता है, उसी रूप में उसे लिखा भी जाता है। किसी अन्य भाषा में ऐसी एकरूपता देखने को नहीं मिलती है। जैसे कि इंग्लिश में केवल लोटस शब्द उपलब्ध हैं, किंतु हिन्दी में इसके लिए नलिन, जलज, पंकज, नीरज, राजीव, कमल, जलधि आदि शामिल हैं। हिन्दी की डिक्शनरी में दस लाख शब्दों का विशाल भंडार है, जो विश्व की किसी अन्य भाषा में नहीं है। हिन्दी संसार की सबसे सरल, सहज और मीठी भाषा है। भाषा महज भाषा नहीं होती है, उसके साथ बोलने वाले की संस्कृति और संस्कार भी जुड़े होते हैं। भाषा केवल विचारों की नहीं, बल्कि भावों की भी वाहक होती है।

हिन्दी ने क्षेत्रीय भाषा के कई शब्दों को आत्मसात किया है, जिसका जिक्र हिन्दी शब्दकोष में भी मिलता है। हिन्दी न तो दिखावे की भाषा है और न ही झगड़े की भाषा। हिन्दी ने अपने अस्तित्व से लेकर आज तक कितनी ही भाषाओं को अपने आंचल से बांध कर हर दिन एक नया रूप धारण किया है। हिन्दी ने खुले दिल से सब भाषा का, भाषा के शब्दों का, शैली और लहजे का स्वागत किया है। फारसी, अरबी, उर्दू से लेकर आधुनिक बाला अंग्रेजी तक को आत्मीयता से अपनाया है।

आज हिन्दी का ग्लोबलाइजेशन हो गया है और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपना माल बाजार में खपाने के लिए हिन्दी और केवल हिन्दी का ही सहारा लेना पड़ रहा है, क्योंकि विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा है हिन्दी। चीनी भाषा के बाद यह विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। भारत और अन्य क्षेत्रों में 80 करोड़ से अधिक लोग हिन्दी बोलते, लिखते और पढ़ते हैं। इतना ही नहीं, फिजी, मारिशस, गुयाना, सूरीनाम, भूटान जैसे दूसरे देशों की अधिकतर जनता हिन्दी बोलती है। भारत से सटे नेपाल की कुछ जनता हिन्दी बोलती है। आज हिन्दी राज भाषा, संपर्क भाषा, जन भाषा के सोपानों को पार कर विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है।

हिन्दी कल–कल करती नदियों की तरह हर आम और खास भारतीय ह्रदय में प्रवाहित होती है, मंदिर की घंटियों की आवाज, गुरूद्वारे की शबद और चर्च की प्रार्थना में भी गूंजती प्रतीत होती है। यह डायरेक्ट हमारे दिल तक पहुंचती है।

राज्य प्रशासनिक सेवा, भारतीय प्रशासनिक सेवा सहित सभी परीक्षाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता को समाप्त कर इसे ऐच्छिक विषय के रूप में रखना चाहिए। हिन्दी अनिवार्य भाषा के रूप में सर्वमान्य भाषा बननी चाहिए। हिन्दी के ज्यादातर शब्द संस्कृति, फारसी, अरबी भाषा से लिए गए हैं। यह समृद्ध और समर्थ भाषा है। इसे सर्वोपरि मानकर इसका शीश झुकाकर समुचित सम्मान किया जाना चाहिए।

हिन्दी को अंग्रेजी भाषा से खतरा कम और अपने लोगों से ज्यादा है, क्योंकि हमारे यहाँ कार्यालयों में ज्यादातर कामकाज अंग्रेजी में होता है। सर्कुलर्स अंग्रेजी में जारी किए जाते हैं। प्रतियोगी परीक्षाओं में अंग्रेजी का पेपर अनिवार्य है, संसद में माननीय सांसदों व मंत्रियों द्वारा अंग्रेजी में शपथ ली जाती है, बहस भी अंग्रेजी में की जाती है तथा विदेशी दौरों में भी अंग्रेजी का इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए कहा गया है कि, भारत एक अंग्रेजी भाषी लोकतंत्र है और कई योग्य हिन्दी भाषी प्रतियोगी भारतीय प्रशासनिक सेवा में चयनित होने से भी वंचित हो जाते हैं। हिन्दी का समग्र विकास तभी संभव है जब हम अपने को सुधारें, दूसरों पर दोषारोपण बंद कर इस नेक काम की शुरूआत केवल और केवल अपने से प्रारंभ करें।

यह हमारे लिए गौरव की बात है कि 10वां विश्व हिन्दी सम्मेलन भोपाल में आयोजित हुआ, लेकिन राजभाषा हिन्दी और हिन्दी प्रेमी दोनों ही इस सम्मेलन से नदारद रहे, क्योंकि प्रवेश शुल्क 5000 निर्धारित था व पंजीयन का ऑनलाइन फार्म भी अंग्रेजी भाषा में ही था। केवल हिन्दी के उत्थान का ढ़ोल ही पीटते रहे। हिन्दी अपनों की ही उपेक्षा का शिकार होती रहेगी। देशवासी इसकी प्रगति में कब मील का पत्थर बनेंगे व एकजूट होंगे, इस पर अभी संशय की स्थिति है। आओ हम सब मिलकर हिन्दी को माथे की बिंदी बनाएं, जिससे कि यह राष्ट्रभाषा बन सके।

हमारे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी का यह बयान कि, मैंने चाय बेच–बेचकर के हिन्दी सीखी है। यह बयान हिन्दी भाषा के उत्थान के लिए लू के गरम थपेड़ों के बीच ठंडी हवा के झोंकों के समान है। यह बयान भी सोचने पर मजबूर करता है कि यदि हिंदुस्तान में हिंदी गरीबों की भाषा है तो क्या अंग्रेजी संपन्नता की प्रतीक है?

हिन्दी के विकास का श्रेय हम गैर हिन्दी भाषियों को देंगे कि ये लोग हिन्दी को अपनी क्षेत्रीय भाषा के साथ आत्मसात कर रहे हैं और विदेशियों ने भी हिन्दी सीख कर इसका मान और रूतबा ही बढ़ाया है। आज हिन्दी वैश्विक बाजार की रानी (क्वीन) है। पहले हम इसे अपनी राजभाषा तो बनाएं .... तभी तो यह राष्ट्रभाषा/विश्व भाषा बन पाएगी। राजभाषा वही हो सकती है जो सरकारी कर्मचारियों के लिए सहज और सुगम हो और हिन्दी में वे सारे गुण विद्यमान हैं।

- हम हिन्दी को देवनागरी में ही लिखें न कि रोमन लिपि में।

- भारत की क्षेत्रीय भाषाएं भोजपुरी, मैथिली, बृज, अवधि और अन्य सहभाषाओं से इसे जोड़कर समृद्ध किया जाए। सरकारी कामकाज, शिक्षा, उद्योग–धंधे, न्याय, स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में इसे प्रचलित कर इसका विस्तार किया जाए।

- संयुक्त राष्ट्र की भी भाषा हो हिन्दी और सभी सरकारी कार्यालयों की अनिवार्य भाषा भी हो हिन्दी।
- इंटरनेट पर लेटिन के साथ देवनागरी में भी खोज सुगम होने से हिन्दी का प्रचार–प्रसार बढ़ेगा व इसके बोलने वालों की संख्या में भी इजाफा होगा।
- हम हिन्दी में वार्तालाप करें, हिन्दी में ही पत्राचार करें और हिन्दी में ही हस्ताक्षर करें।

हम अभी इतना कर सकते हैं कि ये जिस दिशा में बहे स्वाभाविक रूप में इसे बहने दें। इसके सतत प्रवाह में स्पीड ब्रेकर न बनकर इसे दरिया से समंदर बनने दें तथा गागर–गागर मिलकर इसे महासागर तो बनने दें।

वे नारी थी, पर अंग्रेजों पर भारी थीं

मधु शर्मा कटिहा

स्वतंत्र भारत में रहते हुए हम यह भूल जाते हैं कि आजादी जो वृक्ष हमें ठंडी छांव दे रहा है उसकी मिट्टी असंख्य वीरों ही नहीं वीरांगनाओं के रक्त से भी सिंचित है। इनमें कुछ तो ऐसी हैं जिनकी चर्चा बहुत कम होती है। आइये, जानते हैं कुछ ऐसी ही वीरांगनाओं की वीर–गाथाएँ।

वेलू नाचियार

वेलू नाचियार

स्वतंत्रता के लिए संघर्ष प्रारम्भ समान्यतः 1857 से माना जाता है, किन्तु वह एक संगठित आंदोलन था। सच तो यह है कि उससे पहले भी कई देश प्रेमी अंग्रेजों की छाती पर मूंग दल चुके थे। दक्षिण भारत के रामनद राज्य के रामनाथपुरम के राजा चेल्लामुथु सेथुपरी और रानी सकंधीमुथल पुत्री वेलू नाचियार स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाली पहली महिला हैं। इनका जन्म 3 जनवरी, 1730 को हुआ था। तमिल लोगों में वे वीरमंगई अर्थात बहादुर महिला के नाम से भी जानी जाती हैं। वे अनेक युद्ध कलाओं जैसे वलारी (दूर से एक विशेष हथियार फेंकना), सिलंबम (डंडों से लड़ाई) व धनु–बाण आदि में निपुण थी। घुड़सवारी जानने के अतिरिक्त वे विभिन्न भाषाओं जैसे अंग्रेजी, फ्रेंच, उर्दू की विद्षी भी थी।

इनका विवाह मुथुवदूगन थापेरिया उद्यथीवार के साथ हुआ जो शिवगंगे के राजा थे। अकॉट के नवाबजादे ने जब अंग्रेज सैनिकों के साथ मिलकर वेलू नाचियारके पति की हत्या कर इनके राज्य पर अधिकर कर लिया तो ये अपनी पुत्री के साथ बचकर वहाँ से निकल भागी किन्तु म नही मन अपने राज्य को वापिस लेने की ठान ली। वहाँ ये कोपल्ला नायक्कर के संरक्षण में विरूपाची, डिंडीगुल में रहीं और उन्होंने एक महिला सैन्य दल बनाया, जिसका नाम इनकी बेटी के नाम पर उडयाल रखा। उस समय फिरंगियों से बदला लेने के लिए वेलू ने कोपल्ला नायक्कर और हैदर अली से संधि कर दुश्मनों पर आक्रमण शुरू कर दिये।

अंग्रेजों के गोला–बारूद व अन्य सामग्री नष्ट करने के उद्देश्य से एक महिला सैन्य दल की कमांडर केयली अपने शरीरी पर घी डालकर अंग्रेजों की श्स्त्रशाला में कूद पड़ी। भयंकर विस्फोट के साथ सब नष्ट–भ्रष्ट हो गया। इसे विश्व का पहला मानव बम भी कहा जा सकता है। इस प्रकार 1780 में वेलू ने अपना राज्य अंग्रेजो से वापिस छीन लिया।

इनकी मृत्यु 25 दिसम्बर, 1796 के हुई। अंग्रेजों के जबड़े से अपना शासन वापिस छीनकर स्वतंत्रता का

स्वप्न दिखाने का श्रेय निश्चय ही रानी वेलु नचियार को जाता है। झाँसी की रानी लम्मीबाई की वीरता से अंग्रेज बेहद प्रभावित थे, किन्तु सालों पहले उन्होंने यह अनुमान लगाना प्रारम्भ कर दिया था कि भारत में अब ज्यादा समय तक टिक पाना संभव नहीं। यह पाठ उनको पढ़ाने वाली थीं भीमा बाई।

भीमा बाई

भीमाबाई होलकर

इस महान वीरांगनों का जन्म 17 सितम्बर, 1795 में यशवंत राव होलकर के घर हुआ जो इंदौर के राजा थे। पिता ने इन्हें युद्ध सम्बन्धी सभी जानकारियाँ दीं और तीर, जलवारबाजी व बल्लम आदि की शिक्षा दी। भाषाओं में संस्कृत, फारसी, मराठी व हिंदी की अच्छी जानकार थी। 1809 में इनका विवाह गोविंदराव बोलिया के साथ हो गया।

1811 में अपने पिता के निधन के बाद मराठे व गैर मराठे दोनों को षड्यंत्र करने का अवसर मिल गया। इनकी माता तुलसीबाई होलकर ने मल्हारराव होलकर को गोद ले लिया जो राजा की दूसरी पत्नी का पुत्र था। मल्हारराव की आयु बहुत कम थी। अतः राजकाज रानी ही संभालती थीं। अंग्रेज इस सत्ता पर अपनी लोलुप दृष्टि रखे हुए थे। कुछ विश्वासपात्र सेवकों ने अंग्रेजों के साथ मिलकर विश्वासघात किया और रानी तुलसीबाई और पुत्र की हत्या का षडयंत्र रचा। रानी को इस षड्यंत्र का पता पहले ही लग गया और मल्हारराव को लेकर कोटा नरेश जालिम सिंह के पास पहुँच गयी। किन्तु बाद में रानी का सिर काट दिया गया।

भीमा बाई होलकर इस अपमानजनक हत्या से बेहद विचलित हो गयीं तथा अंग्रेजों की नाक में दम करने का निश्चय किया। 3000 घुड़सवारों, 80 तोपों व अनेक पैदल सैनिकों की मदद से छत्रपति शिवाजी से प्रेरित होकर भीमा बाई ने छापामार युद्ध आरम्भ कर दिया। अंग्रेजी रसद, चौकियाँ व खजाने लूटे जाने लगे। अंग्रेज आश्चर्य चकित थे कि न जाने अचानक कहाँ से सेना आकर उन्हें लूट लेती है। इंदौर पर अधिकार करके भी वे उसका सुख नहीं उठा पा रहे थे। चौकियों पर उनका प्रभुत्व स्थापित ही नहीं हो पा रहा था। एक स्त्री द्वारा इस प्रकार पुरूषों को संगठित कर अचानक धावा बोलने का इतिहास में यह प्रथम उदाहरण है।

कर्नल मैल्कम चिंतित हो उठा। भीमा बाई को वह किसी भी हालत में समाप्त कर देना चाहता था, किन्तु भीमा बाई की शक्ति बढ़ती जा रही थी। अपने गुप्तचरों की मदद से वह किसी तरह उनके ठिकाने तक पहुँचता, लेकिन वे पहली ही अपना ठिकाना बदल लेती थीं। इस प्रकार वे जंगल–जंगल भटकती, कष्ट उठाती, किन्तु अंग्रेजों के आगे सिर झुकाने को तैयार न होती।

एक दिन दुर्भाग्य से शिकार करने गए कर्नल मैल्कम की नजर भीमा बाई पर पड़ गयी जो अपने एक सैनिक के साथ वहाँ मौजूद थीं। भीमा बाई ने अपने सैनिक को जाने को कह दिया और स्वयं वहीं तनकर अपने घोड़े पर बैठी रही। कर्नल मैल्कम शिकार को इतने करीब देख बेहद प्रसन्न हुए और अपने सैनिकों से एक घेरा बनाकर इन्हें कैद करने का हुक्म दे दिया। घेरा पास आता जा रहा था पर ये जरा भी विचलित नहीं हो रहीं

थीं। अंत में जब कर्नल मैल्कम बहुत निकट आ गया तो इन्होंने अपने घोड़े की लगाम खींची, घोड़ा पूरा जोर लगा कर भागा। कर्नल मैल्कम झुक्कर घोड़े से बचने का प्रयास करने लगे और इनका घोड़ा सरपट दौड़ पड़ा। देखते ही देख्त ये अंग्रेजों की आँखों से ओझल हो गयी और जीते जी उनके हाथ नहीं लगी।

ज्ब तक ये जीवित रहीं, अंग्रेज को चैन की नींद नहीं सोने दिया, अनेक भारतीयों के लिए प्रेरणा बन उनके हृदय में देशप्रेम की ज्योति प्रज्वलित कर 28 नवम्बर, 1858 में अपनी मातृभूमि इंदैर में इनकी मृत्यु हो गयी।।

झलकारी बाई

महारानी लक्ष्मी बाई की सेना की महिला शाखा दुर्ग की सेनापति झलकारी बाई का जन्म 22 नवम्बर 1930 को झाँसी केपास भोजला गाँव में कोली निर्धन परिवार में हुआ था। झलकारी बाई के पिता सदोवर सिंह व माता जमुना देवी एक निर्धन कोली परिवार से थे। जब ये छोटी थी तो माँ की मृत्यु हो गई। पिता ने इनकी देखभाल एक पुत्र की भांति की।

झलकारी बाई

बचपन से ही झलकारी बाई बेहद बहादुर थी। घुड़सवारी की बेहद शौकीन थी। एक बार वे लकड़ियाँ एकत्र करने जंगल में गई और वहाँ तेंदुए से सामना होने पर उसे कुल्हाड़ी से मार गिराया। एक अन्य घटना में गाँव के एक व्यापारी पर हमला करने वाले डकैत को इनके कारण ही पीछे हटना पड़ा था। इनकी बहादुरी से प्रसन्न होकर गाँववालों ने इनका विवाह रानी लक्ष्मीबाई के तोपखाने की रखवाली करने वाले एक तोपची से करा दिया। विवाह के बाद ये झाँसी आ गई। एक दिन गौरी पूजा के दिन महारानी लक्ष्मी बाई को सम्मान देने वाली महिलाओं के साथ इन्हें देखकर लक्ष्मीबाई आश्चर्यचकित रह गई क्योंकि वे लक्ष्मीबाई की हमशक्ल थी। इनकी बहादुरी के विषय में जानकर लक्ष्मीबाई ने उन्हें अपनी दुर्गा–सेना में सम्मिलित कर लिया।

अप्रैल 1858 में अंग्रेज द्वारा झाँसी के किले पर आक्रमण किया गया। रानी के एक धूर्त सेना नायक दूल्हेराव ने किले के गुप्त द्वार को खोद दिया और झलकारी बाई का पति किले की रक्षा करते हुए शहीद हो गया। झलकारी बाई ने हिम्मत से काम लेते हुए लक्ष्मीबाई की वेषभूषा धारण कर दुश्मन से सामना करने कर निश्चय कियां उनके ऐसा करने पर महारानी को किले से भाग निकलने का मौका मिल गया। झलकारी बाई किले से बाहर निकल गई और ह्यू रोज से मिलने शिविर में चली गई। ह्यूग रोज तत्कालीन ब्रिटिश जनरल थे। वहाँ जाकर वे क्रोध में भरकर चिल्लाई कि उन्हें ह्यूग रोज से मिलना है। अंग्रेज सैनिक उन्हें झाँसी की रानी समझ कर प्रसन्न थे कि झाँसी पर कब्जे के साथ ही भविष्य में किसी विद्रोह की संभावना समाप्त हो गई क्योंकि महारानी भी यहाँ आ गई। जब उनसे पूछा गया कि वे क्या चाहती हैं तो उन्होंने कहा कि उनकों फांसी दे दी जाए। कहते है कि जर्नल रोज ने तब यह कहा था कि भारत की 1% महिलाएँ भी ऐसी हो जाएँ तो ब्रिटिश लोगों को भारत छोड़कर जाना पड़ेग। इतिहासकार मानते है कि उनके साहस से प्रसन्न होकर उन्हें मुक्त कर दिया गया। किन्तु कुछ इतिहासकारों का कहना है कि इसके बाद झलकारी बाई के विषय में

कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती, इससे लगता है कि इस युद्ध में वे वीरगति को प्राप्त हो गई थी। कहीं यह संकेत भी मिलता है कि उन्हें फांसी दे दी गई थी।

अवंतीबाई लोधी

1857 के संग्राम में एक और वीरांगना की भूमिका बेहद अहम् है, वे है रानी अवंतीबाई लोधी। इनका जन्म 16 अगस्त, 1831 को सिवनी जिले के मनकेहणी गाँव में हुआ। इनके पिता राव जुझार सिंह एक जमींदार थे। बचपन से ही उन्हें घुड़सवारी और तलवारबाजी का शौक था। जब बचपन में ये तलवारबाजी करती तो लोग दाँतो तले उँगली दबा लेते।

अवंती बाई लोधी

इनका विवाह रामगढ़ के रजकुमार विक्रमादित्य से हुआ। सन् 1850 में अपने पिता की मृत्यु होने पर विक्रमादित्य को रियासत का राजा बना दिया गया, लेकिन कुछ सालों बाद वे भी अस्वस्थ रहने लगे। राज्य कर सारा कार्यभार अवंतीबाई को संभालना पड़ा, क्योंकि उनके दोनों पुत्र अभी बहुत छोटे थे।

यह वह समय था जब लॉर्ड डलहौजी भारत के गवर्नर जनरल थे। यह कानून बना दिया गया था कि जिस रियासत का कोई उत्तरदायी नहीं होगा उसे अंग्रेज अपने साथ मिलाकर ब्रिटिश शासन हिस्सा मान लेंगे। यही नहीं उन्होंने यह कानून भी बना दिया कि जो रियासतें अंग्रेजी शासन के अधीन हैं वे बिना अनुमति के संतान गोद नहीं ले सकते। रामगढ़ के विषय में जब अंग्रेजों को पता लगा ते उन्होंने वहाँ कोर्ट ऑफ वार्ड्स लागू कर अपने अधीन कर लिया अर्थात वहाँ अपनी ओर से राज्य की देखभाल के लिए एक तहसीलदार नियुक्त कर दिया जो और अवंतीबाई के परिवार को पेंशन देनी प्रारम्भ कर दी।

मई 1857 में अपने पति के निधन के बाद अवंतीबाई अंग्रेजों से बदला लेने के लिए मौके की तलाश में रहने लगी। 1857 के विद्रोह की चिंगारियाँ जब रामगढ़ तक पहुँची तो रानी ने इस आग को आगे बढ़ाते हुए आसपास के राजाओं व जमींदारों को 2–2 काली चूड़ियाँ भिजवाई और साथ में एक पत्र भी दिया, जिसमें लिखा था कि या तो ये चूड़ियाँ पहनकर घर पर बैठो, अन्यथा अंग्रेजों से भिड़ने की तैयारी करो। अवंतीबाई के इस साहसी कृत्य को देख सभी के हृदय में देश प्रेम की ज्वाला प्रज्ज्वलित हो गई और जगह–जगह विद्रोह शुरू हो गए। रानी ने अपने अदम्य साहस का परिचय देते हुए रामगढ़ से कोर्ट ऑफ वार्ड्स संबंधी अधिकारियों को निकाल बाहर किया। इसके अतिरिक्त अन्य सहयोगियों की मदद से घुघरी, बिछिया तथा रामनगर आदि से अंग्रेजी राज का खात्मा करवा दियां इस प्रकार से मध्य भारत की एक क्रांतिकारी वीरांगना के रूप में उभरी।

उनका अगला निशाना मंडला क्षेत्र था। मंडला में इनकी सेना ने अंग्रेज सेना पर हमला किया और जमकर युद्ध हुआ। अवंतीबाई और मंडला के डिप्टी कमिश्नर वाडिंगटन के बीच भी आमने–सामने मुठभेड़ हुई। इस

युद्ध में डिप्टी कमिश्नर का घोड़ा बुरी तरह जख्मी हो गया और कमिश्नर उस पर से उतरकर भागने लगा। अवंतीबाई ने उस पर आक्रमण किया ही था कि उसके एक सिपाही ने बीच में आकर उसे बचा लिया, किन्तु इसके बाद वाडिंगटन भयभीत होकर वहाँ से भाग चुका था। अतः वह क्षेत्र भी रानी के कब्जे में आ गया।

अपनी हार का बदला लेने के लिए वाडिंगटन ने कुछ समय बाद रामगढ़ के किले पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि अवंतीबाई की सेना ने पूरा दम लगाकर उस आक्रमण का सामना किया किन्तु अंग्रेज सेना के मुकाबले में उनके पास हथियारों की कमी थी तथा संख्या में भी वे कम थे। आने वाले खतरे का अनुमान लगते ही रानी सेना सहित देवहारगढ़ की ओर रवाना हो गईं। अंग्रेज सेना वहाँ भी पहुँच गई और उन्हें आत्मसमर्पण करने को कहा, लेकिन इसके लिए वे तैयार न हुईं। अतः वाडिंगटन के नेतृत्व में फिरंगी सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया।

इस युद्ध में अवंतीबाई के कई सैनिक शहीद हो गए। 20 मार्च, 1858 के दिन रानी के बाएँ हाथ में गोली लगी और इनकी बंदूक हाथ से छूट गई। अपना अंतिम समय निकट जान उन्होंने अपने अंगरक्षक से तलवार लेकर अपना अंत कर लिया। तलवार अपने सीने में भोंकते समय उन्होने रानी दुर्गावती को याद करते हुए कहा कि उनकी तरह ही वे भी नहीं चाहतीं कि वैरी उनके जीते जी उनके शरीर को हाथ लगाए।

मालतीबाई लोधी

इस वीरांगना का जन्म एक किसान परिवार में हुआ था। महारानी लक्ष्मीबाई विवाह के बाद ही राज्य का भ्रमण कर रही थीं तब उनकी भेंट मालतीबाई से हुई। इनके साहस और तीरंदाजी को देख लक्ष्मीबाई चकित रह गईं। मालतीबाई से बात कर लक्ष्मीबाई ने अपने महल से घोड़ा, तलवार और तीरकमान इनके लिए भेजे और अभ्यास करने के साथ ही अन्य युवक और युवतियों को भी तीर व तलवार चलाना सिखाने को कहा। कुछ दिनों में ही वहाँ एक छोटी से सेना तैयार हो गई। 1857 में जब अंग्रेजों ने झाँसी हड़पने की योजना बनाई तो मालतीबाई व उनकी सेना भी झाँसी जा पहुंचे। मालतीबाई को रानी ने अपनी अंगरक्षिका बना लिया।

युद्ध के समय महारानी का घोड़ा नाले को पार नहीं कर पा रहा था। कई बार कोशिश करने पर वह गिर पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई। ऐसे में मालतीबाई ने उन को अपना घोड़ा दे दिया। कुछ देर बाद ही गोली का शिकार होकर मालतीबाई की सांसें थम गईं।

ऊदा देवी

ऊदा देवी का जन्म अवध के उजरियांव में हुआ था, किन्तु कब इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। छोटी आयु में ही इनका विवाह मक्का पासी नामक युवक से हो गया।

1847 में जब वाजिद अली अवध व लखनऊ के नवाब बने तो अंग्रेजों के विरुद्ध अपनी सेना संगठित करने के लिए उन्होंने नए लोगों को भर्ती करना शुरू कर दिया। मक्का पासी भी उनकी सेना का अंग बन गए। अपने पति को देश के लिए सेना में भर्ती होते देख ऊदा देवी भी महिला दस्ते का हिस्सा बन गईं। 1857 में जब विद्रोह की ज्वाला भड़की तो अंग्रेज भी स्थान–स्थान पर आक्रमण करने लगे। 10 जून 1857 को उन्होने

ऊदा देवी

अवध पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में मक्का पासी शहीद हो गए। यह खबर पाकर ऊदा देवी का खून खौलने लगा और उन्होने अंग्रेजों से लोहा लेने का निश्चय किया। उन्होने बेगम हजरत महल की सहायता से महिलाओं की लड़ाका बटालियन बना ली।

नवंबर 1857 में फिरंगी सेना ने लखनऊ में आक्रमण किया और वे शस्त्र लेकर सिकंदर बाग की ओर चल दिये क्योंकि वहाँ पर राज्य के सैनिक मोर्चा संभाले थे। ऊदा देवी पुरुष वेश बाग के प्रवेश द्वार के पास लगे पीपल के पेड़ पर चढ़ गईं और वहीं से अंग्रेजी सेना पर गोलियां बरसानी शुरू कर दीं । 30 से अधिक ब्रिटिश सैनिकों के ढेर हो जाने के कारण अंग्रेज सेना तिलमिला गई। अपने सैनिकों के शव देखने पर उन्हें पता लगा कि कोई ऊपर से गोलियाँ चला रहा है। जब पीपल के पेड़ पर एक मानवकृति दिखाई दी तो उन्होने वहाँ निशाना लगाकर गोलियाँ बरसानी शुरू कर दीं। गोलियों से छलनी ऊदा देवी जब नीचे गिरीं तो उनके प्राण पखेरू उड़ चुके थे। उस समय ही अंग्रेज सैनिक यह जान पाये की वह एक पुरुष नहीं स्त्री थीं, जिसने इतनी देर तक उन्हें प्रवेश द्वार पर रोके रखा। अंग्रेज सेना की इस टीम का नेतृत्व जनरल काल्विन कर रहे थे। वे उनकी बहादुरी से इतने प्रभावित हुए कि अपना हैट उतारकर ऊदा देवी को श्रद्धांजलि अर्पित की।

रानी तपस्विनी

रानी तपस्विनी

एक महान वीरांगना और महारानी लक्ष्मीबाई की भतीजी रानी तपस्विनी का जन्म 1842 में हुआ था। इनके पिता एक जमींदार थे। बचपन से ही अदम्य साहस की मूर्ति रानी तपस्विनी अस्त्र–शस्त्र चलाने के साथ–साथ घुड़सवारी का अभ्यास भी किया करती थीं। इनका वास्तविक नाम सुनन्दा था। बालविधवा होने के कारण अपने पिता की मृत्यु होने पर संपत्ति की देखरेख का सारा कार्यभार सुनन्दा ने संभाला। वे अक्सर पूजा–पाठ में लीन रहती थीं, किन्तु अस्त्र–शस्त्र चलाने का अभ्यास करना नहीं छोड़ा।

1857 में जब स्वतन्त्रता आंदोलन का सूत्रपात हुआ तो उसमें सुनन्दा ने खुलकर भाग लिया, यही नहीं इनके कहने पर कई और लोगों ने भी इसमें सक्रिय रूप से अपनी भूमिका निभाई। उनके इस कृत्य से बौखलाए अंग्रेजों ने सुनन्दा को पकड़कर तिरुचिरापल्ली की जेल में डाल दिया। बाद में रिहा होने पर ये नाना साहब के साथ नेपाल चली गईं।

वहाँ अनेक भारतीय भी रहते थे, जिनके दिलों में इनके द्वारा देशप्रेम की ज्योति जलाई गई। इसके अतिरिक्त

नेपाल के प्रधान सेनापति चन्द्र शमशेर जंग की मदद लेकर इन्होने गोला–बारूद बनाने की एक फैक्ट्री भी लगाई, जिससे सामान भारतीय क्रांतिकारियों तक पहुँचे और उनकी मदद हो पाये। किन्तु कुछ समय बाद ही इनको नेपाल छोड़कर कलकत्ता जाना पड़ा, क्योंकि इनके एक सहयोगी के मित्र ने अंग्रेजों को सब बता दिया था।

कलकता में बच्चों को देशप्रेम की शिक्षा देने के उद्देश्य से इन्होनें एक पाठशाला खोली। 1905 में बंगाल विभाजन के समय हुए क्रन्तिकारी आन्दोलन में इन्होनें सक्रिय रूप से भाग लिया था। अपना सम्पूर्ण जीवन मातृभूमि को समर्पित कर 1907 में ये इस दुनिया से दूर चली गईं।

कुमारी मैना

मैना ऐसी वीरांगना थी जिसने किशोरावस्था में ही देश के लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिये थे।

कुमारी मैना

नाना साहब पेशवा के नेतृत्त्व में 1857 के संग्राम में भारतीय पक्ष विजयी होने के बाद कमजोर पड़ने लगा था। नाना साहब पर अंग्रेजी सरकार ने इनाम रख दिया था। अतः वे चाहते थे कि बिठूर से कहीं दूर जाकर सुरक्षित स्थान ढूँढें व नए सिरे से सेना संगठित कर अंग्रेजों पर धावा बोलें। नाना साहब की एक दत्तक पुत्री थी, नाम था मैना। उस समय उसकी आयु केवल 13 वर्ष थी। नाना साहब समझ नहीं पा रहे थे कि उसको साथ ले जाएँ या नहीं। दोनों ही तरह से उसकी जान को खतरा था। मैना एक साहसी बाला थी। उसने पिता के कार्य में व्यवधान बनने के स्थान पर महल में ही रहना उचित समझा।

नाना साहब के जाने की सूचना मिलते ही अंग्रेजों ने उनके महल को घेर लिया और गोले दागने शुरू कर दिये। कुमारी मैना भागकर एक गुप्त स्थान पर छुप गई। जब तोप की आवाज आनी बंद हो गई तो मैना महल से बाहर आ गई। वहाँ मलबे के पास ही कुछ अंग्रेज सिपाही मौजूद थे। जनरल आउट्रम के आदेश पर उसे गिरफ्तार कर लिया गया।

अंग्रेज मैना को बंदी बनाकर अपने साथ ले गए। वे प्रसन्न थे कि उनके हाथ एक कम उम्र की लड़की आई है। अब तो विरोधियों के नाम और ठिकाने वे निश्चय ही जाने जा सकेंगे।

फिरंगियों ने मैना को खूब यातनाएं दी। मारा–पीटा और कई दिनों तक भूखा–प्यासा भी रखा। किन्तु मैना ने अपना मुँह नहीं खोला। अंत में उसे एक पेड़ से बाँधा गया और चारों ओर लकड़ियाँ जलाईं गई। तपती गर्मी में इस कष्ट से गुजरने पर भी मैना की जबान नहीं खुली। फिर इसी आग में जलकर 3 सितंबर,1857 को इस बाल–वीरांगना ने अपने प्राणों की आहुति दे दी।

आशा देवी गुर्जराणी

आशा देवी का जन्म 1829 में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के उस हिस्से में हुआ था जिसे अब शामली के नाम से जाना जाता है। 1857 में स्वतन्त्रता संग्राम का बिगुल बजा तो देशप्रेमी सक्रिय हो उठे। पर कुछ इसे सैनिक विद्रोह मान रहे थे। आशा देवी गुर्जराणी का यह विचार था कि स्वतन्त्रता संग्राम में सैनिकों का लड़ना ही पर्याप्त नहीं है। समाज के प्रत्येक वर्ग को इस लड़ाई में भाग लेना चाहिए। इस सोच के साथ ही उन्होने महिलाओं की एक सेना संगठित कर ली और आसपास के इलाकों में अपनी पैठ बना ली। अंग्रेजों को इनकी सेना ने कई बार मुश्किल में डाला। अंग्रेज इन्हें जीवित ही पकड़ना चाहते थे,पर इसके लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। 250 महिला सैनिकों को मारने के बाद ही अंग्रेज इन्हें जिंदा पकड़ पाये। बाद में 11 अन्य महिलाओं के साथ इन्हें 8 मई, 1857 को फाँसी दे दी गई।

महावीरी देवी

वीरांगना महावीरी देवी का बलिदान कम गौरवपूर्ण नहीं है। मुजफ्फरनगर जिले के मुंदभर गाँव की रहनेवाली महावीरी देवी अशिक्षित, लेकिन तीव्र बुद्धि की स्वामिनी थी। इनके पिता सूप–पंखे बनाने का कार्य करते थे।

देशभक्त होने के साथ साथ वे समाजसेविका के गुण भी समेटे थीं। 1857 में उन्होने 22 स्त्रियों की एक ऐसी टीम बनाई जो महिलाओं और बच्चों को मान–सम्मान से जीना सिखाती थी। अंग्रेजों ने जब मुजफ्फरनगर पर आक्रमण किया तो इसी महिला संगठन ने उन्हें छटी का दूध याद दिलाने का निश्चय किया। बाईस नारियों की ये सेना गंडासे और कांते हाथों में थामे अंग्रेजों से भिड़ गई। अंग्रेजी सेना के अनेक सैनिक महावीरी देवी के हाथों मारे गए। अपनी मातृभूमि की रक्षा करते हुए अंत में ये बलिवेदी पर चढ़ गईं।

अजीजन बाई

स्वतन्त्रता आंदोलन, 1857 में जब भी कानपुर का जिक्र होगा, तब–तब अजीजन बाई का नाम भी लिया जाता रहेगा। अजीजन बाई का जन्म 1832 में हुआ था। उनके पिता लखनऊ में उस समय के जानेदृमाने गायक थे. पेशे से नर्तकी अजीजन बाई अपने माता–पिता की मृत्यु के पश्चात कानपुर आ गयीं थीं।

जब नाना साहब के नेतृत्त्व में वहाँ क्रांति का बिगुल बजा तो अजीजन बाई ने भी उसमें भाग लिया। अपने नर्तकी होने का लाभ उठाते हुए उन्होने सेना के लिए गुप्तचर की भूमिका निभाई और साथ ही साथ एक क्रांतिकारी बनकर अपने प्राण तक न्योछावर कर दिए। दिन में ये पुरुष वेष में युद्ध करतीं तथा रात में अंग्रेजों की छावनी में जाकर नृत्य करतीं व उनकी गुप्त सूचनाएँ एकत्र करतीं।

इनका काम अंग्रेजों से मिले हुए भारतीय सैनिकों को नाच गाकर बहलाते हुए नाना जी की ओर करना भी था। नाना साहब उनका बहुत सम्मान करते थे और उनसे राखी भी बंधवाते थे।

अजीजन बाई द्वारा महिलाओं को प्रशिक्षित कर 'मस्तानी टोली' बनाई गई। इस संगठन का कार्य बंदूकों में कारतूस डालना, तोपों में बारूद भरना, घायल सैनिकों की मदद कर उनके भोजन आदि का ध्यान रखना था।

मस्तानी टोली की मदद से नाना साहब की सेना ने अंग्रेजों को हरा दिया था। मस्तानी टोली में लगभग 25 नर्तकियाँ सम्मिलित थीं। इन सबने मिलकर लाल बंगला में रहने वाले सभी अंग्रेजों को भी मौत के घाट उतार दिया। इस हार से बौखलाए अंग्रेजों ने बाद में ज़्यादा तैयारी कर कानपुर पर फिर से चढ़ाई कर दी। कुछ लोगों का कहना है कि इस युद्ध के दौरान ही अजीजन बाई अंग्रेजी सेना की पकड़ में आ गईं। अंग्रेजों ने उन्हें रिहाई का लालच दिया किन्तु बदले में अपनी सेना की सेवा करने की शर्त रखी। इस शर्त को मानने इस बात से क्षुब्ध होकर इन्हें मौत के घाट उतार दिया गया।

वहीं कुछ लोगों मानना है कि वे आजादी के लिए बनाई गई सेना के सेनापति तात्या टोपे से मिली थीं और उनके आदेश पर ही अंग्रेजों के खेमों में जाकर उनकी गुप्त योजनाएँ तात्या टोपे को बताती थीं। इस बात का पता लगने पर इन्हें गिरफ्तार कर अंग्रेज कमांडर हेनरी हैवलॉक के समक्ष प्रस्तुत किया गया। हेनरी हैवलॉक इनकी सुंदरता पर मुग्ध हो गया और केवल एक क्रांतिकारी अजीम उल्ला खां का पता बता देने पर माफ करने का वादा किया। माफी मांगने से इंकार करने पर इनके शरीर को गोलियों से छलनी कर दिया गया।

प्रीतिलता वादेदार

स्वतन्त्रता के लिए अपना जीवन न्योछावर करने वाली वीरांगनाओं का उल्लेख करते हुए प्रीतिलता वादेदार का नाम सम्मिलित न हो तो चर्चा अधूरी ही होगी। इनका जन्म 5 मई, 1911 में चटगांव में हुआ। बचपन से ही इनकी इच्छा अध्यापिका बनने की थी। इसके अतिरिक्त ये रानी लक्ष्मी बाई से बेहद प्रभावित थीं व उनकी तरह ही मातृभूमि के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देना चाहती थीं। बेहद तीव्र बुद्धि की इस बालिका ने इंटरमीडिएट की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया और बीए में दाखिला लिया। इसके बाद लीला नाग के दीपाली संघ में शस्त्र विद्या का प्रशिक्षण लेकर महान क्रांतिकारी सूर्यसेन की सेना में सम्मिलित हो गईं।

18 अप्रैल, 1930 को अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सूर्यसेन की सेना ने चटगांव में बने शस्त्रागार से हथियार लूट लिए। अंग्रेज सेना ने क्रांतिकारियों पर गोलियाँ बरसा दीं, जिसमें सूर्यसेन के कई साथी मारे गए। प्रीतिलता व सूर्यसेन बचकर भाग निकले और कुछ दिन छुप कर बिताए। कुछ समय बाद अपने साथियों की मौत का बदला लेने के लिए दोनों ने मिलकर एक योजना बनाई। इस योजना के अंतर्गत उन्हें एक नाईट क्लब पर आक्रमण करना था, जहाँ फिरंगी स्त्री और पुरुष शराब पीकर नाच–गाना किया करते थे।

प्रीतिलता को आभास था कि अपनी जान की बाजी लगाते हुए वे कभी भी अंग्रेजों के हाथ लग सकती हैं। किन्तु वे चाहती थीं कि जब तक उनके शरीर में प्राण हैं कोई दुश्मन उन्हें हाथ न लगाए। इसलिए उन्होने पोटैशियम सायनाइड नामक विष अपने साथ रख लिया।

23 सितंबर, 1932 को अपने साथियों के साथ मिलकर उन्होने क्लब पर आक्रमण कर दिया और अनेक अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया। उन्हें अपने साथियों की मृत्यु का बदला तो मिल गया पर अंग्रेजों की ओर से चलाई गोली में प्रीतिलता घायल हो गईं। जब इन्हें आभास हो गया कि अब वहाँ से बचकर निकलना मुश्किल है तो पोटैशियम सायनाइड खाकर इस वीरांगना ने अपनी जान दे दी। धन्य है वह आत्मा जिसने 21 वर्ष की अल्प आयु में आत्मबलिदान दिया और देश को स्वतन्त्रता के मार्ग पर ले जाने का पुण्य कर्म किया।

कनकलता बरुआ

कनकलता बरुआ एक अन्य महान वीरांगना हैं। अपना नाम छोटी आयु में ही शहीदों की सूची में दर्ज करवाकर ये सदा के लिए अमर हो गईं।

इनका जन्म 22 दिसंबर, 1924 में असम के बारंगबड़ी गाँव में हुआ था। दुर्भाग्य से बचपन में ही इनके माता–पिता की मृत्यु हो गई। इनका लालन–पालन नानी के घर हुआ।

मई 1931 में इनके ननिहाल के पास गाँव में रैयत सभा हुई। अपने दो मामायों यदुराम बोस और देवेंद्र नाथ के साथ ये भी उस सभा में गईं। वहाँ ज्योतिप्रासाद अगरवाला के गीतों को सुनकर कनकलता भावविभोर हो उठीं। ज्योतिप्रासाद अगरवाला उस समय के प्रसिद्ध गीतकार व नेता थे। सभा की अध्यक्षता करते हुए उनके द्वारा सुनाये गीतों ने कनकलता के हृदय में देशभक्ति की आग सुलगा दी।

अंग्रेजों ने इस सभा में भाग लेने वालों को राष्ट्रद्रोही कहकर जेल में बंद कर दिया गया। इससे असम में आक्रोश बढ़ गया। कनकलता का नन्हा हृदय भी अंग्रेजों के प्रति घृणा से भर गया। फिर 1942 में जब मुंबई में 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित हुआ तो वहाँ से असम लौटने पर नेताओं को बंदी बना लिया गया। इससे आम जनता में अंग्रेजों के प्रति विद्रोह और भड़क उठा। भारत छोड़ो का प्रभाव आग में घी डाल रहा था।

20 सितंबर, 1942 को ज्योतिप्रासाद अगरवाला के नेतृत्व में गुप्त सभा हुई और स्वतन्त्रता का आह्वान करने हेतु थानों पर तिरंगा झण्डा फहराने का फैसला किया गया।

गुहपुर थाने पर तिरंगा फहराने जो जूलुस जा रहा था उसकी अगुआई 19 वर्षीय कनकलता कर रही थीं। जैसे ही जूलुस वहाँ पहुँचा थाने के प्रभारी पी.एम. सोम ने बीच में आकर उनका रास्ता रोक लिया। कनकलता ने उसे समझाने का प्रयास किया कि वे किसी प्रकार का संघर्ष नहीं करेंगे, अपितु तिरंगा लहराकर स्वतन्त्रता का आह्वान मात्र करना चाहते हैं। थाने के प्रभारी ने उन्हें धमकी दी कि एक कदम बढ़ाने पर ही उन पर गोलियाँ चला दी जाएंगी। कनकलता निडर होकर बोलीं कि गोली चलाकर कोई उन्हें उनके कर्त्तव्य से विमुख नहीं कर सकता और वे आगे बढ़ गईं। उनके आगे बढ़ते ही गोलियाँ चला दी गईं। कनकलता को गोली लगी और वे वहीं ढेर हो गईं। लेकिन उनके बलिदान से युवकों में जोश भर गया और वे आगे बढ़ते रहे, उधर गोलियों की बौछार भी जारी थी। अंत में रामपती राजखोवा नामक वीर ने वहाँ तिरंगा फहरा ही दिया। कनकलता का शव क्रांतिकारी वीर अपने कन्धों पर उठाकर लाये और बारंगबड़ी में उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया। वीरांगना कनकलता की कुर्बानी व्यर्थ नहीं गई। इसके बाद क्रांति की आग और तेजी से भड़की और अंत में स्वतन्त्रता प्राप्ति का उनका सपना साकार हुआ।

कालीबाई

ब्रिटिश काल में स्थान–स्थान पर लोगों पर दुहरी मार पड़ रही थी। एक ओर अंग्रेजों का निरंकुश शासन तो दूसरी ओर सामंतों के द्वारा शोषण। लोग पढ़े–लिखे भी नहीं थे कि अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों। कुछ समाजसेवी संस्थाओं और क्रांतिकारियों की मदद से कई स्थानों पर विद्यालय चलाये जा रहे थे।

एक ऐसा ही विद्यालय राजस्थान के डूँगरपुर जिले के रास्तापाल नामक गाँव में खोला गया। इस पाठशाला के संरक्षक एक प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी नानाभाई खांट थे और सेंगाभाई रोत वहाँ अध्यापन का कार्य करते थे।

1947 के समय पूरे देश में आजादी के संग्राम का बिगुल बजा हुआ था। डूँगरपुर में आम जनता तक यह आवाज पहुँचाने का कार्य इसी प्रकार की पाठशालाओं के माध्यम से हो रहा था। शिक्षक अंग्रेजों के अत्याचार की कहानियाँ सुनाया करते थे।

रास्तापाल की पाठशाला में कालीबाई कलसुआ नामक एक 13 वर्षीय छात्रा भी पढ़ती थी जो भील जाति की थी। आजादी की कहानियाँ सुन वह भी स्वतंत्र देश की कल्पना लिया करती थी। अंग्रेजी सत्ता के प्रति उसके मन में नफरत का बीज अंकुरित हो चुका था।

स्वतन्त्रता आंदोलन का दमन करते हुए अंग्रेजों ऐसी पाठशालाएँ बंद करवा देना चाहते थे। रास्तापाल की पाठशाला बंद करवाने के लिए भी अनेक बार प्रयास हुए।

19 जून, 1947 को डूँगरपुर का पुलिस अधिकारी कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ पाठशाला में आ पहुंचा और नानाभाई व सेंगाभाई को अंतिम चेतावनी के तौर पर पाठशाला बंद करने का हुक्म सुना दिया। जब वे नहीं माने तो डंडे और बंदूक की बट से उनकी पिटाई करनी शुरू कर दी। नानाभाई वृद्ध थे, अतः इस पिटाई को सहन न कर पाये और उनके प्राण पखेरू उड़ गए। सेंगाभाई को अधिकारी ने अपने ट्रक के पीछे बाँध दिया। गाँववाले खड़े होकर सब देखते रहे पर किसी की कुछ बोलने की हिम्मत नहीं हुई। उसी समय कालीबाई भी वहाँ आ पहुँची जो खेतों में अपने जानवरों के लिए घास काट रही थी।

कालीबाई ने पूछा कि उनके गुरु को क्यों बांधा गया है?पुलिस अधिकारी बौखलाकर चुप हो गया। कालीबाई के बार–बार पूछने पर उसे कारण बताना ही पड़ा। इस पर कालीबाई ने कहा कि स्कूल चलाना तो अपराध नहीं है। मैंने तो सुना है, इससे हमारा विकास होता है। गाँववाले यह वार्तालाप सुनकर पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध नारे लगाने लगे। यह देख पुलिस अधिकारी क्रोध में आ गया और कर उसने ट्रक चलाने का आदेश दे दिया। कालीबाई ने आव देखा न ताव। वह दौड़कर अपने गुरु के पास पहुँची और अपने हाथ में पकड़ी हंसिया से उनकी रस्सी काट दी। इस बात से वह अधिकारी आग–बबूला हो गया और उसने अपनी पिस्तौल निकालकर कालीबाई पर गोलियाँ चला दीं। गाँववालों ने यह दृश्य देखकर पथराव करना शुरू कर दिया जिससे डरकर पुलिस वाले वहाँ से भाग गए। कालीबाई को डूँगरपुर के अस्पताल ले जाया गया पर उसके प्राण नहीं बच सके। कालीबाई के इस बलिदान से सेंगाभाई की जान बच गई और आजादी की लहर तीव्र हो गई।

ऐसी वीरांगनाओं ने बलिदान न दिया होता तो स्वतन्त्रता एक स्वप्न मात्र बनकर रह जाता। देश इनका सदैव ऋणी रहेगा।

कवितायें

कौरव कौन, कौन पाण्डव

अटल बिहारी वाजपेयी

अटल बिहारी वाजपेयी

कौरव कौन
कौन पाण्डव,
टेढ़ा सवाल है।
दोनों ओर शकुनि
का फैला
कूट जाल है।
धर्मराज ने छोड़ी नहीं
जुए की लत है,
हर पंचायत में
पांचाली
अपमानित है।
बिना कृष्ण के
आज
महाभारत होना है,
कोई राजा बने,
रंक को तो रोना है।
('क्या खोया क्या पाया' से साभार)

म़जहब कोई ऐसा चलाया जाए

गोपालदास नीरज

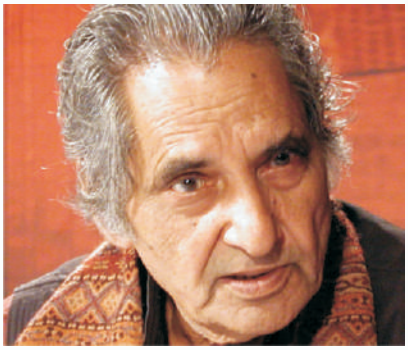
गोपालदास नीरज

अब तो म़जहब कोई ऐसा भी चलाया जाए
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।

जिसकी खुशबू से महक जाय पड़ोसी का भी घर
फूल इस क़िस्म का हर सिम्त खिलाया जाए।

आग बहती है यहाँ गंगा में झेलम में भी
कोई बतलाए कहाँ जाके नहाया जाए।

प्यार का खून हुआ क्यों ये समझने के लिये
इस अंधेरे को उजाले में बुलाया जाए।

मेरे दुख–दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा
मैं रहूँ भूखा तो तुझसे भी न खाया जाए।

जिस्म दो हो के भी दिल एक हों अपने ऐसे
मेरा आंसू तेरी पलकों से उठाया जाए।

गीत उन्मन है, गजल चुप है, रूबाई है दुखी
ऐसे माहौल में 'नीरज' को बुलाया जाए।

बस व्यथा ही व्यथा

चन्द्रसेन विराट

चन्द्रसेन विराट

प्रेम की क्या कथा
बस व्यथा ही व्यथा
त्रासदी ही रही
प्रेम की तो प्रथा
शोक का है दिवस
जो कभी पर्व था
प्रेम है ही कहाँ
सब शिकायत वृथा
क्या इसी प्रेम पर
आपको गर्व था
रख न चादर सके
हम यथा की तथा
प्राप्त माखन नहीं
छाछ को क्यों मथा
प्रेम से था कहा
ले लिया अन्यथा
प्रेम हर हाल में
प्रेम है सर्वथा

('बोल, मेरी जिन्दगी!' से साभार)

अमर शहीद

एन. पी. श्रीवास्तव

हंसते हंसते
अपने प्राणों का
उत्सर्ग कर
हमें आजादी
दिलाने वाले
अमर शहीद
हमेशा
अमर रहेंगे
ना हों
अपने साथ
भले ही
हरदम अपने
पास रहेंगे।
गुलामी के
पीड़ा और वेदना
भरे वो दिन
जेल की
काल कोठरियों में
सिसकता वो
लाचार जीवन
पिंजरे में कैद
पंछी की मनोदशा
वो अपमान
वो दुर्दशा
सब हमें
आज भी
याद है

यह उन्हीं का
बलिदान था
जो हम आज
आजाद हैं।
उनकी वीरता के
किस्से तो
जमाना कहेगा
शीश हमारा
उनकी खातिर
हर दम हर पल
झुका रहेगा।
जब आजादी का
ज़श्न मनायें
हरगिज उनको
भूल ना जायें
वो जो हमसे
दूर हो गये
मरकर भी जो
अमर हो गये।
अमर शहीदों को
अर्पित श्रद्धा सुमन
उन वीर
बलिदानियों को
सादर नमन।

प्रेम एक शक्ति

डा0 कल्पना श्रीवास्तव

प्यार अगर मिल जाये तो –
– एक खुशनुमा शाम है
एक सपनों भरी रात है
एक सुरमई सुबह है।
– जीवन की तरंग है
मन की उमंग है
स्वाति की बूंद है
फूलों की खुशबू है।
– आँखों की चमक है
होठों की गरमाहट है
स्वरों का संगीत है
भावनाओं का मीत है।
– लहरों की उछाल है
बरसात की रिमझिम है
जाड़ों की धूप है
इंद्रधनुषी रूप है।
प्यार अगर खो जाये तो –
– आंसुओं का समंदर है
दर्द का अहसास है
तन्हाई का साया है
अंतहीन प्यास है।
– दर्द के ही पलों में
जन्म लेते हैं
नए रूप। नया जीवन
नई रचना। नयी संरचना
– उचाईयों की ओर
ले जाता है ये दर्द
या डूबा देता है
समंदर में।
– या जला देता है
स्वयं की चिता
या दफ़न कर देता है,
खुद को जमींन में।
– या बहा ले जाता है
उस ओर
जहाँ बनते हैं
दर्द के नए रिश्ते
वो अगर टूट भी जाये तो
कोई गम नहीं होता।
– सच तो ये है
कोई भी पल
ठहरता नहीं है
न प्यार के पाने का
न प्यार के खोने का।
– प्रेम तो एक भागवत भाव है
जिसे–गीता की तरह
कुरान की तरह
पढ़ना है
समझना है
और सम्पूर्ण आस्था और
विश्वास के साथ
जीवन में उतार लेना है।
भावनाओं को कर्म का
रूप देना है।

स्वच्छता अभियान

उमाशंकर

स्वच्छता अभियान

स्वच्छ भारत बनायें हम अपना
करें बापू का साकार वो सपना
स्वच्छता के लिये स्वयं स्वच्छ बनें
साफ–सफाई में निपुण व दक्ष बनें
स्वच्छ भारत की ज्योति जन–जन में जलायें
बांध स्वच्छता की डोर चलें
हर गाँव, मोहल्ला, हर गली की ओर चलें
दूर भगायें देश से गंदगी को
स्वस्थ बनायें हर एक जिंदगी को
स्वस्थ जीवन व दीर्घायु की एक विधि
स्वच्छता संजीवनी समान बस यही औषधि
स्वच्छता में शक्ति है विश्वास है
स्वच्छता में देवी–देवताओं का वास है
याद करों उन बीती सदियों को
स्वच्छ करो भारत में बहती नदियों को
बिना स्वच्छता न मन होतर चंगा
आज प्रदूषण ग्रसित हो रही गंगा
आओ मिलकर संकल्प उठायें
सफल स्वच्छता अभियान चलायें
माँ गंगा को स्वच्छ बनायें
स्वच्छता घर–घर पहुँचायें
स्वच्छता का सूरज
पूरे भारत में चमकायें।

विविध

संस्थापना दिवस के अवसर पर नीलांजलि पत्रिका का विमोचन

हिंदी सप्ताह के अवसर पर आयोजित कार्यशाला

नीलांजलि को एक और गणेश शंकर विद्यार्थी प्रथम पुरस्कार

सम्पादकीय मंडल, नीलांजलि

हिन्दी सप्ताह 2018 की झलकियां

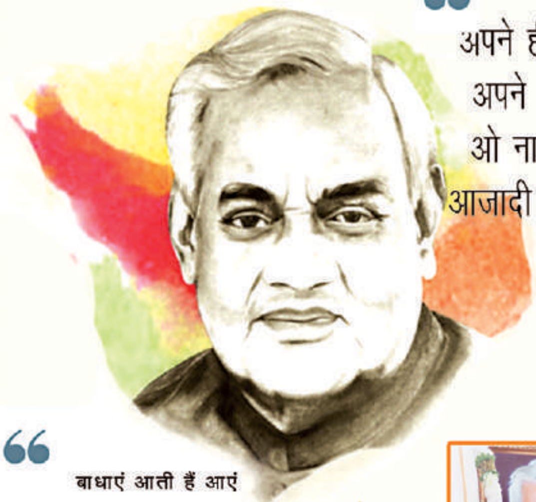

“ अपने ही हाथों तुम अपनी कब्र न खोदो
अपने पैरों आप कुल्हाड़ी नहीं चलाओ
ओ नादान पड़ोसी अपनी आंखें खोलो
आजादी अनमोल न इसका मोल लगाओ।

श्रद्धांजलि

उन्हीं की कविताओं के माध्यम से...

“ बाधाएं आती हैं आएं
घिरें प्रलय की घोर घटाएं,
पावों के नीचे अंगारे,
सिर पर बरसें यदि ज्वालाएं,
निज हाथों में हंसते-हंसते,
आग लगाकर जलना होगा.
कदम मिलाकर चलना होगा. ”

भावभीनी श्रद्धांजलि

स्व. अटल बिहारी वाजपेयी

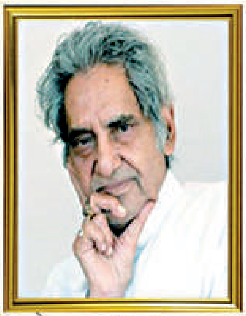

स्व. कवि नीरज

स्व. चन्द्रसेन विराट

स्व. वी. आर. देसाई

स्वच्छता ही सेवा

सिफरी का प्रयास

रचनाकार विवरण

डा. बि. के. दास निदेशक भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता – 700120	डा. संतराम यादव सहायक निदेशक (राजभाषा) केन्द्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (CRIDA), संतोषनगर, हैदराबाद–500 059, तेलंगाना राज्य
डा. उत्तम कुमार सरकार, प्रधान वैज्ञानिक भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता – 700120	डा. ए. के. बोस एवं रिधि बोस कार्यक्रम समन्वयक–मात्स्यिकी, तीसरी मंजिल, एल.एन. कॉर्पोरेट, होटल पीनएकल के पीछे, जयपाल सिंह स्टेडियम के पास, कचहरी चौक, रांची–834001, झारखण्ड
श्रीमती गुंजन कर्नाटक, वैज्ञानिक भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता – 700120	मो. कासिम भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता – 700120
सुश्री सुनीता प्रसाद भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता – 700120	अबसार आलम और जितेन्द्र कुमार क्षेत्रीय केंद्र, भाकृअनुप–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान 24 पन्ना लाल मार्ग, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश– 211002
श्री कौशिक राय, शोधार्थी भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता – 700120	डा. कल्पना श्रीवास्तव क्षेत्रीय केंद्र, भाकृअनुप–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान 24 पन्ना लाल मार्ग, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश– 211002
डा. सत्य प्रकाश तिवारी, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग शिवपुर दीनबंधु इंस्टिट्युशन (कॉलेज), 412/1, जी. टी. रोड (साउथ), शिवपुर, हावड़ा – 711 102 एवं अतिथि प्रवक्ता, हिन्दी विभाग कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता	विकास साव शोधार्थी, कलकत्ता विश्वविद्यालय कोलकाता–73
डा. विजेता साव असिस्टेंट प्रोफेसर रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय, कोलकाता	नलिन खोईवाल डी–27, पंडित प्रेमनाथ डोगरा नगर रतलाम–457001, मध्य प्रदेश
डा. देब प्रसाद, वैज्ञानिक भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय पटसन एवं संवर्गी रेशा प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान 12, रीजेंट पार्क, कोलकाता–700040	श्री मनीष तोमर, शोधाथी, हिन्दी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता–73
श्री. के. एल. अहिरवार, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय पटसन एवं संवर्गी रेशा प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान 12, रीजेंट पार्क, कोलकाता–700040	श्री शीतांशु कुमार असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय, सिल्चर–788011
डा. कृपाल दत्त जोशी, प्रधान वैज्ञानिक भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय मत्स्य अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो कैनाल रिंग रोड, पी.ओ. दिलकुशा, लखनऊ–226002	श्री विकास साव, शोधार्थी, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता
श्रीमती मधु शर्मा कटिहा E–502, केन्द्रीय सरकार आवासीय परिसर, डी.डी.यू. मार्ग, नई दिल्ली–110002	डा. मुन्ना लाल प्रसाद, रानी सती रोड, मौनी बाबा मन्दिर के पास, गंगानगर, सिलीगुड़ी, दार्जिलिंग, पश्चिम बंगाल

कवितायें

श्री अटल विहारी बाजपेयी पूर्व प्रधानमंत्री, नई दिल्ली	स्व. डा. गोपालदास नीरज
स्व. चन्द्रसेन विराट 121, वैकुन्ठधाम कॉलोनी इन्दौर (मध्य प्रदेश)	डा. एन. पी. श्रीवास्तव, पूर्व प्रधान वैज्ञानिक भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता – 700120
डा. कल्पना श्रीवास्तव क्षेत्रीय केंद्र, भाकृअनुप–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान 24 पन्ना लाल मार्ग, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश– 211002	श्री उमाशंकर भाकृअनुप–केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर–700120, पश्चिम बंगाल

संस्थान में आयोजित चित्रकारी प्रतियोगिता के पुरस्कृत चित्र

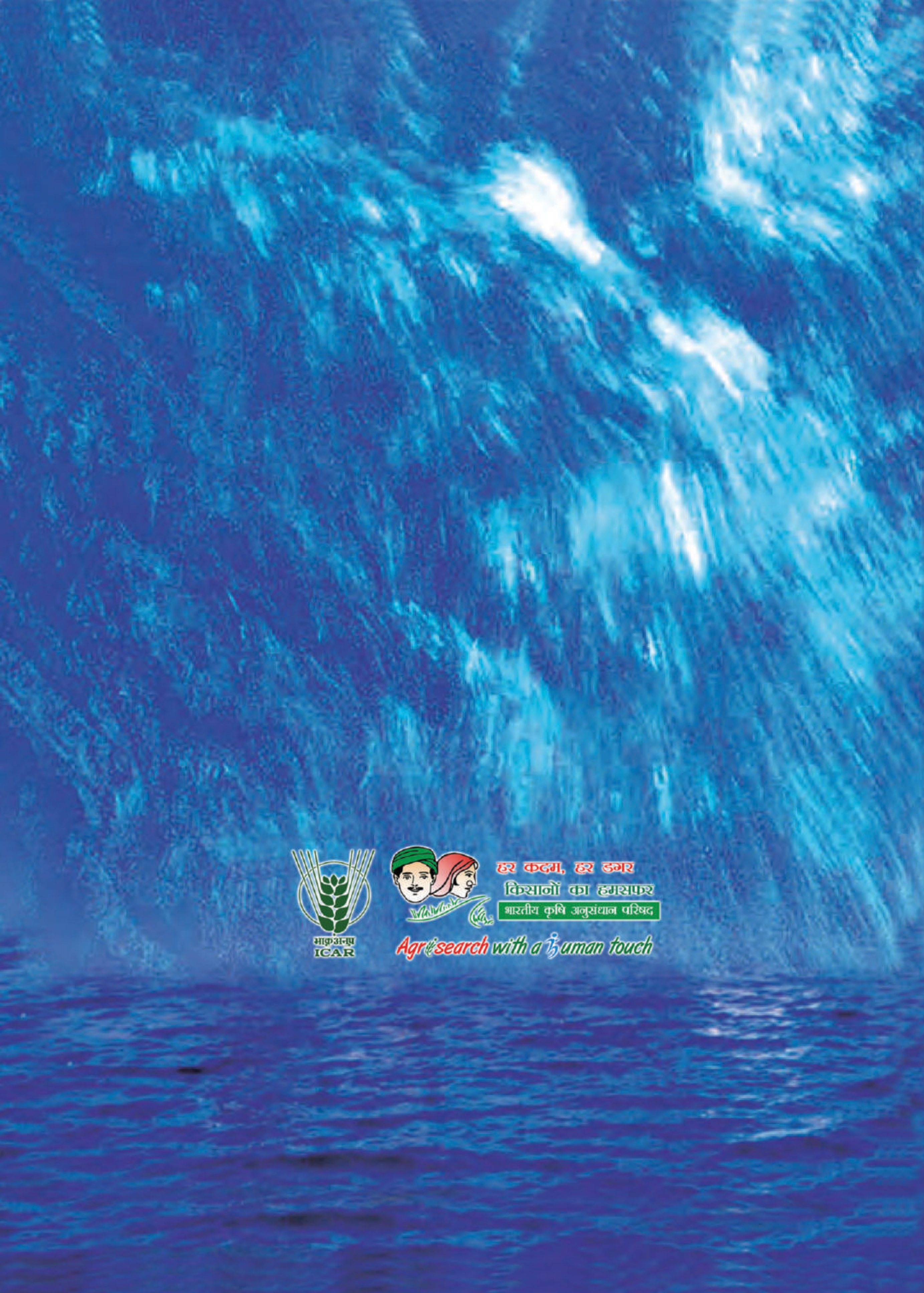

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
भाकृअनुप
ICAR
Agrisearch with a human touch